कृतांत

[कहानी-संग्रह]

सुबोध गोविल

कृतांत

सुबोध गोविल

राजस्थान प्रकाशन
जयपुर

कहानी संग्रह—कृतान्त

प्रकाशक— राजस्थान प्रकाशन, जयपुर

मुद्रक— माडर्न प्रिण्टर्स, किशनपाल बाजार, जयपुर

मूल्य— पन्द्रह रुपया मात्र

प्रथम संस्करण— 1985

SHORT STORIES KRITANT By—SUBODH G

समर्पण

मुझे इस बात का दुःख जीवन पर्यन्त सालता रहेगा कि मैं अपने पिता के जीवन काल मे अपने किसी कर्म वृक्ष पर उपलब्धि सुमन न खिला सका।

"माली सीच सौ घडा, ऋतु आय फल होय।"

शाश्वत सत्य है।

और अब जब सिलसिला चल पडा है तो अपने पिता की आकांक्षाओं के अनुरूप मेरा ये एक और उपलब्धि सुमन

अनुक्रमणिका

— ० —

कथामुख

मैंने जब से होश सम्भाला है, मैं प्रतिदिन सहस्रो व्यक्तियो से मिलता रहा हूँ। और ये अनुक्रम आज भी जारी है। आज तक असख्य लोगो से मेरा परिचय हो चुका है। सबने मुझे अपनी एक अलग पहचान बताई है। . किसी की पहचान मजहब से है, तो किसी परिशा से। किसी की गरीबी से है तो किसी की अमीरी से ? किसी की कारोबार से है, तो किसी की खानदान से। किसी की बेरोजगारी से है, तो किसी की पद से। . .कई लोग तो मुझे ऐसे भी मिले, जिन्होने अपनी पहचान किस्मत अथवा बद-किस्मती से बताई ! . अब मैं हतप्रभ सा, इनमे से ऐसे व्यक्ति की तलाश कर रहा हूँ, जिसकी पहचान इन्सानियत से हो ! ...मानवता से हो ! .. ये मेरी ही नही, सम्पूर्ण समाज की त्रासदी है।

जब जब भी मैंने समाज के 'स्वनिर्मित' इन वर्गो के किसी वर्ग विशेष मे से इन्सानियत या मानवता की पहचान रखने वाले व्यक्ति को खोजने का प्रयत्न किया है, तब तब मेरे इस कहानी सग्रह की एक एक कहानी का सूत्र-पात होता गया है।

अब मेरे इस कथोपकथन मे कितना यथार्थ है, अथवा मैंने ये खोज कितनी निष्ठापूर्वक की है, इस बारे म जानकारी तो आपको इन कहानियो को आद्योपान्त पढने पर ही हो सकेगी !

'यातना', 'वकालत', 'पुत्रवधू' और 'प्रसव पीडा'—चार उपन्यासो के उपरान्त मेरा ये प्रथम कहानी सग्रह है।

मेरी ये कहानियाँ समाज को कोई क्रान्तिकारी, नई दिशा देंगी या इनसे सामाजिक कुरीतिया के पुराने जर्जर महल ढह जायेंगे . ऐमा दावा तो

मैं कैसे कर सकता हूँ ! किन्तु इतना अवश्य कह सकता हूँ, कि मेरा पाठक वर्ग, इन कहानियों के माध्यम से उठाई गई सामाजिक कमियों के बारे मे सोचने पर मजबूर अवश्य हो जायेगा ! ....और ये मेरा विश्वास है कि जब कोई बात दिल-ओ-दिमाग मे पैठ जाती है, तो देर-सवेर इन्सान उस दिशा मे कदम उठाने को बाध्य हो जाता है।

पूर्व की भाँति अब भी मैं आपकी प्रतिक्रिया की बेताबी से प्रतीक्षा करूंगा !

आपका,
सुबोध गोविल

56, वसुन्धरा कॉलोनी,
टोंक रोड
जयपुर–राजस्थान

कृतांत

जिस अखबार को मैंने बडी दौडधूप के बाद आज बाजार से खरीदा था, उसे अपने कमरे मे आकर लापरवाही से मेज पर पटक दिया।.... अब मेरे लिये इसका कोई महत्व नही रह गया था।..जब कि इसी अखबार ने मुझे बताया है कि मैं इस वर्ष हायर सैकण्ड्री मे फर्स्ट डिवीजन मे पास हुआ हूँ। मेरे सभी साथी उछल-उछल कर अपनी खुशियो को द्विगुणित कर रहे थे, लेकिन मेरा मन किसी के साथ अपनी खुशियाँ बाँटने का न हुआ....इसीलिये घर चला आया।

पापा यथावत् अपनी खाट पर सो रहे थे। जी किया, उन्हे झकझोर कर उठा दूँ।..उन्हे बता दूँ कि मैं फर्स्ट आया हूँ। उनसे लिपट जाऊँ और वो उठकर खुशी से मुझे सीने से लगा लें। मुझ पर स्नेहिल आशीर्वादो की बौछार कर दें। एक वे ही तो हैं, जिन्हें ये खुशखबरी सुना कर मैं मानसिक तृप्ति प्राप्त कर सकता हूँ।...किन्तु ऐसा कुछ न हो सका। उस कमरे मे बरसो से पसरी वीरानियो ने मुझे फिर एक बार अपने दामन म समेट लिया। थक कर निढाल सा मैं उस कमरे मे पापा की खाट से सटकर पडी दूसरी खाट पर लेट गया। अपनी खुशियो एव उमगो की लहरो को अपने सीने मे दफन करते। खाट पर पडते ही दीवार पर टगी मम्मी की फोटो आखो के घेरे मे सिमट आई. और आखें, साश्रु हो उठी। फिर, वही अहसास सूनेपन का, ममता की छाँव की तडप का, दिल को कचोटने लगा।

"भइल ..।"

अचानक पिंकी की आवाज ने मेरे मन सागर मे कंकर के समान गिरकर, उस पर तैरती मम्मी की एक बहुत धुधली, पुरानी सी छवि को तहस-नहस कर दिया। पिंकी अपने नौकर की गोद से उतर कर मेरे पास आकर खाट पर बैठ चुका था। उसका मासूम चेहरा देखकर मैं हल्का सा

प्रसन्न हुआ,....मानसिक रूप से नही....मात्र चेहरे की भगिमा से। पिछले कुछ ही दिनों मे पिकी से आत्मीयता का एक बन्धन सा बध गया है। पिकी की मम्मी जब भी कभी बाजार जाती हैं, उसे मेरे पास खेलने भेज देती हैं और वह कुछ समय के लिए मेरे खिलौनो से खेलने लगता है।....मेरे खिलौनो से !....मेरे वो खिलौने, जो मेरे लिये बरसो पहले लाये गये थे।....छोटी साइकिल, गेंद-बल्ला, मोटर, गुडिया ... और न जाने क्या क्या।....अब तो ये खिलौने अपने जीवन की वृद्धावस्था पर हैं, ...लेकिन जब ये जवान थे, तब भी मुझे इन्होने कभी आल्हादित नही किया।....इनके अस्तित्व ने सदैव मेरा मन बहलाने की बजाय, मेरे सूने जीवन को यादो की तपिश से और अधिक गरमाया है।

थोडी देर बाद आने को कहकर वो नौकर जाते-जाते मेरे हाथो मे जो पर्ची थमा गया था, मैं उसे देखकर उछल पडा। हमारी नई पड़ोसन, पिकी की मम्मी से इस बारे मे मेरी पहले ही बात हो चुकी थी। इस पर्ची मे मेरी मम्मी का पता था।....पर्ची देखकर मेरे निढाल से जिस्म मे न जाने कैसे स्फूर्ति का सृजन हुआ....और मैं उठकर मम्मी को पत्र लिखने बैठ गया।

आदरणीय मम्मी !, आज आपको मेरा ये पत्र देखकर मालूम हो जायेगा कि मैं अब बडा हो गया हूँ।....इतना बडा, जो आपको पत्र लिख सकूँ। आपकी स्मृति अब एक रिश्ते का अहसास मात्र है। आप जब घर से गई थी, तब मैं इतना छोटा था कि अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति मेरे बस मे न थी। और आज, जब अभिव्यक्ति बस में है, तो भावनाएँ मर चुकी हैं। सच,....अब तो दिल की ये जिज्ञासा भी मर चुकी है कि मेरी भी कोई मा हो, जिसके पल्लू से लिपट कर मैं उसकी स्नेहिल छत्र-छाया का आनन्द ले सकूँ। मोह उससे होता है, जिसका अस्तित्व सामने होता है।....आप चली गईं, तो शनैं शनैः इस दिल के आईने मे रची-बसी आपकी छवि भी अस्तित्व विहीन होती गई ...होती गई।

उस समय तो पापा ने यह कहकर दिलासा दी थी कि मम्मी हम सब से रूठ कर बहुत दूर चली गई है।....इतनी दूर, जहा से कोई लौट कर नही आता। लेकिन बाद मे मालूम पडा कि आप हम सब से नहीं, केवल पापा से,

रूठी हैं।....उन पापा से, जिनके साथ आपने अपने माता-पिता की सहमति के बिना अग्नि के समक्ष सात फेरे खाकर, आजीवन साथ देने का सकल्प लिया था।.. .उन पापा से, जिन्होने सर्प-दश के समय आपके जिस्म से जहर चूस लिया था, चाहे फिर उन्हे होश मे लाने के लिए डॉक्टर भी पसीने-पसीने हो गये थे। आपके चले जाने के बाद मैंने पापा के चेहरे पर भरपूर मुस्कुराहट की झलक कभी नही देखी।.. .कैसे मरियल से हो गये हैं पापा....! पिछले कई बरसो से मैं यही जानने मे लगा हूँ कि आखिर आप पापा से रूठी ही क्यों!....उन्होंने कभी आपकी इच्छाओ ,का दमन नही होने दिया।.... आपने नौकरी करनी चाही, तो आपके इस फैसले के समक्ष भी वे नत-मस्तक हो गये थे। हाँ, .. पापा बताते है आपको शालू से बहुत प्यार है।....इसीलिये आपने उसे भी मुझसे छीन कर मेरा बचपन अपाहिज बना दिया। हर बार राखी पर उसकी याद मे आँसू के दो कतरे बहा ही लेता हूँ।.. .अब तो वह भी बड़ी हो गई होगी!. ..उसे तो आपने बहुत काबिल बना दिया होगा न!....क्योकि आप इसीलिए तो हम लोगो को छोड गईं थी, कि पापा के कमजोर आर्थिक धरातल पर शालू के भविष्य का महल खडा होना, आपकी नजरो मे सन्देहास्पद था। या फिर .मुझे अच्छे कॉनवैंन्ट स्कूल मे दाखिला दिलवा कर शालू को सरकारी स्कूल मे पढाने की योजना ने आपकी आशाओ पर तुषारापात किया था।....लेकिन यह तो आप भी जानती थी कि हम दोनो को कॉनवैन्ट स्कूल मे पढाना सभव न था, क्योकि इससे आर्थिक विक्षिप्तता पनपने का भय था।....इसी बीच जब आपकी सर्विस लगी, तो पापा का रोम-रोम पुलकित हो गया था।....अब उन्हे दोनो बच्चो को एक ही स्कूल मे पढाने मे कोई एतराज न था।. ..सर्विस आपकी पापा से भी अच्छी थी।.... पापा तो सरकारी क्लर्क मात्र थे, जबकि आप प्राइवेट कम्पनी मे अच्छे ओहदे की भागीदार बनी। वे इस बात से भी आश्वस्त थे कि सरकारी नौकरी व प्राइवेट नौकरी मे पदोन्नति क्रमश कछुए और खरगोश की चाल के समान होती है। इसीलिये उन्होने आपकी नौकरी के घोडे को हम दोनो के भविष्य के रथ मे जोतने का निश्चय किया था।

लेकिन तब ही, वो ज्वालामुखी फूटा, जिसके मलबे मे हम दोनो मा

भविष्य, पापा की जिन्दगी की रूमानियत, अमन-चैन और न जाने क्या-क्या दफ़ कर रह गया था। सच मम्मी,....कभी-कभार जब मैं जाने-अनजाने मे पापा के जख्मो को उकेर देता, तो पापा के दिल के गुबार हमारे समक्ष प्रस्फुटित होकर ही रहते।....इसी शृंखला मे एक बार पापा ने बताया था कि जब आपने पापा को ये कहकर अपमानित किया कि "जब आपके पास मेरी बेटी को पढाने-लिखाने, खिलाने-पिलाने के लिये पैसे नही हैं, ...तो,.... तो मेरे पास भी आपके लाडले की पढाई-लिखाई और ऐश करने के लिये पैसे नही है।"—तो उनका जी, एक बार तो आत्महत्या करने को हो आया था।....ये विलगाव का बीजारोपण था,....फिर इसे ऐसी और कई घटनाओं का सिंचन मिला और ये वृक्ष फलीभूत हुआ।....आप हर बात मे अब केवल शालू का ही ध्यान रखती।....उसी के भविष्य निर्माण के प्रति सजग रहती, जिससे अलगाव के उस वृक्ष को और पलने-बढ़ने का अवसर मिला।.... यहाँ तक कि बात पापा की उपेक्षा तक आ पहुँची।....आखिर एक दिन पापा के धैर्य का बाध टूट ही गया।

उस दिन शाम को जब पापा टूटे से, थके हारे आफिस से लौटे तो मुझे घर पर अकेला देखकर उनका शालू की अनुपस्थिति के बारे मे पूछना स्वाभाविक ही था। मैंने रुआसा होकर कहा था—"पापा,....हम लोग आज स्कूल की ओर से पिकनिक पर जाने वाले थे।....टीचर ने पिकनिक के लिए बीस-बीस रुपये जमा करवाने को कहा था....पापा!....मम्मी ने शालू के पैसे तो जमा करवा दिये थे,....मेरे नही करवाये थे,....इसीलिये शालू तो पिकनिक पर गई है और मैं सवेरे से घर पर अकेला हूँ।"

यही वो मनहूस दिन था, जब आप पापा से झगडकर अपनी एक सहेली के घर चली गई थी, शालू को साथ लेकर।....और पापा ने शायद यह सोचकर बुलाने का प्रयास नही किया कि जब आपका दहकता आक्रोश मद पड जायेगा, तो आप स्वय चली आयेंगी। . लेकिन आपके अभिमान ने पापा की तमाम आकाक्षाओ, भावनाओ और प्रेम को रौंद कर रख दिया ... चार दिन बाद जब समाचार मिला कि आपने अपना तबादला अपनी कम्पनी की कलकत्ता ब्रान्च मे करवा लिया है, तो पापा के लिए आगरा जैसी

रोमान्टिक कहानियों की जन्म भूमि, बंजर होकर रह गई थी। "वाइफ का ट्रान्सफर कैंजकटा हो गया है।"....कहकर पापा ने समाज कंटकों से तो मुक्ति पा ली थी, लेकिन स्वयं की आत्मा के समक्ष वे निरुत्तर हो गये थे।

मुझे तो हाल ही में मालूम हुआ कि, इस अप्रिय घटना के लिये मैं ही जिम्मेदार हूँ। जिसकी सजा स्वरूप मैं आपके प्यार को सदैव तरसता रहा हूँ।...लेकिन जब पड़ोस वाली आंटी ने मुझे बताया कि मैंने आपकी कोख से जन्म नहीं लिया है, तो मेरे अविश्वास करने पर उन्होंने मुझे सविस्तार बताया कि, शालू के जन्म के बाद डाक्टरों ने आपके दोबारा माँ न बन सकने की घोषणा कर दी थी।....और तब आपकी सहमति से ही पापा मुझे किसी अनाथालय से लेकर आये थे। आंटी कह रही थीं, न जाने वो कौन सी मनहूस घड़ी थी, जब अपने जीवन की अन्तिम सांसें गिनते मेरे अछूत पिता ने मुझे एक नजर देखने के लिए, आपके दरवाजे पर दम तोड़ कर मेरे अछूत होने का रहस्योद्घाटन कर दिया था।...और शायद उसी दिन से आपके हँसते-खेलते परिवार में विलगाव का सूत्रपात हुआ था।....मैं आपसे पूछता हूँ मम्मी....मेरा अछूत होना मेरा कृतांत था...फिर आपने गृह-त्याग क्यों किया ?....ये सब तो मुझे करना चाहिए था !....इसके लिए आपके सुखद दाम्पत्य तथा शालू के जीवन के रंगीन सपनों की आहुति देना कहाँ तक न्याय संगत था ? सच मम्मी ... ! तब, यदि मैं मानसिक रूप से परिपक्व होता तो ये अनर्थ कभी न होने देता।

मम्मी....जानती हैं !....आपकी कम्पनी के ब्रांच मैनेजर का स्थानान्तरण आगरा हुआ तो संयोगवश उन्हें मकान भी इसी कॉलोनी में मिला। उनका बेटा पिंकी....बड़ा प्यारा है। उस दिन जब वो यहाँ आया, तो आपकी फोटो देखकर वो आपको पहचान गया। सच मम्मी,....मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा, जब पिंकी की मम्मी से आपका पता मिला। ये पत्र मैं आपको पापा से छिपकर लिख रहा हूँ।

मैंने इस वर्ष हायर सैकण्डरी पास किया है। प्रथम श्रेणी में। अब इन्जीनियरिंग में प्रवेश लेने का विचार है।....मेरा नहीं,....ये पापा की

जिद है।....मैं जानता हूँ इसके लिये पापा को अपने जिस्म की बची-खुची हड्डियों पर बलात्कार करना होगा। पिछले दस बरसो से एक पहिये पर खिचड़ते-खिचड़ते उनकी जिन्दगी की गाड़ी की चूलें अब ढीली हो गई हैं। आपके चले जाने से उनकी जिन्दगी मे एकाकीपन का जो सैलाब आ गया था, उसने उन्हे गला-गला कर कमजोर बना दिया है। ...आपको खोकर उन्होंने जो कुछ खोया उसका हिसाब-किताब तो मेरे पास नही है, लेकिन हाँ जो कुछ उन्होने पाया है, वह निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है! अपनी उस जीवन निधि को, अपनी एक मात्र उपलब्धि को उन्होने आज भी अपने जर्जर होते सीने मे सजो रखा है। उन्हे विश्वास है कि उनकी वही अनमोल उपलब्धि उन्हे इस सैलाब मे मुक्ति दिला सकेगी।.. .आपके स्वाभिमान को ठेस पहुँची न ! . कि उन्होने इतनी महत्वपूर्ण उपलब्धि कैसे अर्जित कर ली !....ये तो अपनी अपनी किस्मत है मम्मी ! – अरे !... मैं इतनी देर से उपलब्धि-उपलब्धि की रट लगाये हूँ, उसके बारे मे तो आपको बताया ही नही !.. जानती हैं, वो क्या है ?....पापा की वो अनमोल निधि है ट्यूबरकुलोसिस ! जिसे शार्ट मे टी बी कहते हैं। वो भी छोटी मोटी अवस्था मे नही . पूर्ण विकसित। . वैल डवलप्ड।''

बस !. .इतना ही लिख पाया था, कि मेरी कलम की आवाज जैसे रुध गई थी। आगे कुछ लिखने की हिम्मत न हुई। अभी मैं इसी कशमकश मे था कि इस पत्र को पोस्ट करूँ अथवा नही....कि अचानक सामने से पिंकी को लेने उसका नौकर कमरे मे प्रविष्ट हुआ और उसने मेरी मुश्किल आसान कर दी। कई क्षणो के आत्म-मथन से भी निष्कर्ष का जो माखन मेरे हाथ नही लग रहा था, वो जैसे उसके आते ही, स्वतः ही मेरी थाली में परोस दिया गया था।

''ये पत्र डालना है बाबू ?....लाओ हम डाल देंगे।''

उसने लगभग झपट्टा सा मारा और वो पत्र, जिसे मैंने लिफाफे मे रखकर मम्मी का पता लिख कर तैयार कर रखा था, मुझसे ले लिया।

मेरे पत्र के प्रत्युत्तर मे चौथे दिन ही जब मम्मी का अगले दिन आगरा पहुँचने का तार आया तो मैं खुशी से उछल पडा। जिस दिन मम्मी आते

वाली थी, उसी दिन मैं आँखो मे अश्रु लड़ियाँ लिये, सोते हुये पापा के चरण स्पर्श कर, उस घर से हमेशा-हमेशा के लिये निकल पड़ा था। मुझे विश्वास था कि मेरे कृतांत की कालिमा से उस आँगन मे फैले सत्रास के अंधेरे अब सदा के लिये तिरोहित हो जायेंगे।... किन्तु अपना बैग लिये घर से बाहर निकलते समय, अप्रत्याशित रूप से मम्मी से मेरा आमना-सामना हो गया। मेरी साश्रु आँखें देखकर वे न केवल मुझे पहचान गईं, अपितु उन्हें ये भी अहसास हो चला था कि मैं उन्हे सुखद-दाम्पत्य जीवन प्रदान करने के लिए इस घर से सदा-सदा के लिये जाने को तैयार खड़ा हूँ। उनके पीछे शालू थी। तत्क्षण मम्मी ने उद्वेलित होकर मुझे आँचल से लगा लिया था।...मेरा बैग अब जमीन पर पड़ा था और मैं मम्मी से लिपटकर फफक-फफक कर रो पड़ा था। मैं सोच रहा था मेरी रगो मे बरसो पहले भी वही खून था जो आज है। सिर्फ मम्मी के देखने का अन्दाज बदलने से हम सबकी जिन्दगी के सुनहरे क्षण फिर लौट आये हैं।....मन का रिश्ता क्या खून के रिश्ते से कम होता है!....आज मेरी मम्मी के मन मे मेरे प्रति उमड़ा पड़ रहा प्यार, स्नेह इस बात का साक्षी है कि ये छुआ-छूत सब इन्सान के मन का, उसकी नजरो का मैल है.... और आज मैंने यह मैल आँसुओ मे घुलकर अपनी मम्मी की आँखो से बहकर निकलते हुये देख लिया था।



बहेलिया

रूपा ने ग्यारहवी कक्षा म प्रवेश किया तो सब लडके उसके सम्मान म अपनी अपनी सीट पर खडे हो गये।

"सिट् डाउन ब्वायज।"

एक मधुर सी आवाज उस कमरे मे गु जायमान् हुई और इसी के साथ सब लडके यथास्थान बैठ गये।

हायर सैकण्डरी क्लास के इस सैक्शन से इस स्कूल के प्रिंसिपल साहब भी परेशान है। यहा चाहे कोई भी अध्यापक अध्यापिका क्यों न आ जाये, लडके किसी के समक्ष अनुशासित होकर नही बैठते। यही कारण है कि कोई भी अध्यापक अध्यापिका इस क्लास मे आने से पूर्व स्वय को मानसिक रूप से तैयार करके, पूर्ण रूप से सजग होकर ही आता है। इस क्लास मे कई टीचर्स के साथ नागवार हादसे गुजर चुके है। किन्तु इस बारे मे इस स्कूल मे चन्द महीनो पूर्व ही स्थानान्तरित होकर आई रूपा एक अपवाद है। शायद ये उसका सरल सौम्य व्यक्तित्व ही है जिसकी वजह से वह अपने विद्यार्थियो की प्रिय शिक्षिका बन गई है। स्कूल मे वह न तो अधिक बन ठन कर आती है और न ही आवश्यकता से अधिक कुछ बोलती है। इसीलिये लडके उसका सम्मान करते हैं। कहते हैं अपना मान अपमान इन्सान स्वय अपने व्यवहार व करमो से ही करवाता है। रूपा के सन्तुलित व्यवहार ने ही उसकी ये छवि बनाई है। ये बात अलग है कि लडके कभी-कभार रूपा की क्लास मे हास परिहास कर लिया करते है।

अपने नाम के अनुरूप रूपसी रूपा ने अपने हाथ म लगा एक बडा सा पर्स, एक किताब व उपस्थिति पजिका मेज पर रखे और उसी मेज पर पडा डस्टर उठाकर ब्लैक बोर्ड साफ करने लगी।

"टीचर....।"

इससे पहले कि रूपा ब्लैक-बोर्ड साफ करके विद्यार्थियो की ओर मुखातिब होती, एक स्वर उस कमरे मे गूंजा तो रूपा ने पलटकर सम्बोधन-कर्त्ता की ओर देखा।

"बोलो मनीष !"

"एक बात पूँछू टीचर ?"

लड़के का प्रश्न आत्मीयता का पुट लिये हुये था इसलिये रूपा ने उसे अनुमति दे दी।

"हा हा पूछो"

"टीचर हमने सुना है, अगले महीने हम लोगो का जो टूर बम्बई जा रहा है आपने उसमें जाने से इन्कार कर दिया है ?"

मनीष ने विधिवत खड़े होकर प्रश्न किया था।

"हा ...। तुमने ठीक ही सुना है।"

"लेकिन टीचर,.. हम सब लोगो की ये हार्दिक इच्छा है, कि इस टूर में आप हमारे साथ रहे।"

"नही मनीष, तुम्हे इस मामले में टीचर से जिद नही करनी चाहिये। तुम ये बात अच्छी तरह जानते हो कि किसी इन्सान की जब शादी होती है तो वो ।"

इससे पहले, कि रूपा मनीष की बात का कोई उत्तर देती, मनीष के अभिन्न मित्र विमल ने उस वातावरण मे परिहासपूर्ण फुहार बिखेरने का प्रयास किया। किन्तु रूपा ने वस्तुस्थिति को देखते हुए इस वार्तालाप को वहीं खत्म कर दिया।

"मनीष, इस बारे मे तुम्हे मुझसे जो कुछ भी पूछना हो, क्लास के बाद स्टाफ रूम म पूछ लेना। यहा सब लोगो का समय बर्बाद करना अनुचित है। हा तो बच्चो। आज हम लोग राजा हरिशचन्द्र की कहानी पढेंगे। ऐसा सच्चा इन्सान फिर कभी पैदा नही हुआ '

'आपको प्रिंसिपल साहब याद कर रहे है।

अप्रत्याशित रूप से स्कूल के चपरासी ने वहा आकर रूपा को कहानी प्रारम्भ करने से रोक दिया।

"अच्छा, तुम लोग अपनी-अपनी किताबें निकालकर इस कहानी को एक बार पढलो ...फिर हम लोग इस पर चर्चा करेंगे । मैं जरा प्रिंसिपल साहब के पास होकर आती हूँ । तुम लोग क्लास मे शोर-गुल मत करना ।"

तत्क्षण, रूपा अपने हाथ मे लगी किताब मेज पर रखकर कमरे से बाहर निकल गई । -- और अनुशासन के पर्दे मे छिपी उच्छृ खलता बेपर्दा होकर रह गई । सभी लडके अपने-अपने स्वभाव व मानसिक स्तर के अनुरूप क्रियाकलापो, वार्तालाप मे पूर्ण रूप से मशगूल हो गये थे ।

"मनीष !"

रूपा के जाते ही विमल ने वार्तालाप का दौर प्रारम्भ कर दिया ।

"हूँ ... ।"

"तू भी बुद्धू है यार ।"

"क्यो ! ! ... क्या हुआ ?"

"अरे ऐसी बातें भी कोई किसी से पूछी जाती हैं ?... उनकी नई नई शादी हुई है ! ये दिन उनके, अपने पति के साथ हनीमून मनाने के हैं....या हम लोगो के साथ टूर पर जाने के ? ..अबे टूर तो हर साल होते ही रहते हैं !... शादी तो जीवन मे एक ही बार होती है न !....इन दिनो उन्हें हमारा क्या ध्यान रहेगा ! ..अभी, जब मैं क्लास मे आ रहा था तो रूपा टीचर स्टाफ रूम मे बैठी अपने नवेले दूल्हे को पत्र लिख रही थी !....प्रेम-पत्र !"

"अच्छा ! !"

अचानक जैसे मनीष को भी विमल की बातो मे रस आने लगा था ।

"और नही तो क्या !....और उसके बाद ये भी क्लास मे ही आई है . बल्कि वो पत्र अभी इन्होने पोस्ट भी नही किया होगा !....मेरे विचार से तो अभी उस पर्स मे ही होगा ! .. बोल ? देखें वो प्रेम पत्र ?"

"ना ना.. छोड यार....किसी लडके ने चुगली कर दी तो मुफ्त मे जायेंगे मारे अपन लोग !"

"छोड यार ! किसकी हिम्मत है जो हमारी शिकायत करेगा ! ... उसे इस स्कूल म रहना है या नही ! .. ठहर मैं देखता हूँ । . "

विमल बडे आत्मविश्वास के साथ रूपा की टेबल तक पहुच गया । वहा पडा पर्स उठाकर जब उसने खोला तो उसकी आखो मे क्षणिक चमक

उभर आई। उसमे वास्तव में एक अन्तर्देशीय पत्र मिला! पत्र देख कर उसका चेहरा विजय की मुस्कान से खिल उठा। अपने चेहरे पर अदम्य स्वभाव लिये वह पर्स पुन उसी मेज पर रखकर, वो पत्र लेकर अपनी सीट पर लौट आया। मनीष उसके इस 'साहसिक' कृत्य पर हतप्रभ हुआ, विस्फारित आँखो से उसे देख रहा था।

"विमल, ...कही हँसी-मजाक म कोई बखेडा न हो जाय यार!.... . मेरी बात मान, वापस रख आ इस पत्र को! जरा सोच ये प्रेम पत्र कैसे हो सकता है?... उन्हे अपने पति को पत्र लिखने की जरूरत ही क्या है?....जब नई-नई शादी हुई है...तो साथ-साथ तो रहते ही होंगे दोनो पति पत्नी!"

"नही यार।...मैं जानता हूँ ..इनके हजबैण्ड भी टीचर हैं, उनका पोस्टिंग किसी गाव के स्कूल मे है वो हर हफ्ते-पन्द्रह दिन मे आ पाते हैं.. और बाकी काम पत्रो से ही चलता है।"

"तू तो बडा चालाक है रे विमल!. तो फिर चल खोल इसे.... देखें तो, प्रेम-पत्र मे क्या क्या होता है!"

विमल ने वो अन्तर्देशीय पत्र खोलने के लिये उसके अन्दर उगली घुसाई ही थी कि सामने से रूपा को आते देखकर रुक गया। फुर्ती से उसने वो पत्र अपने नेकर की जेब मे रख लिया।

"अब क्या होगा विमल?"

मनीष के चेहरे पर किंचित घबराहट खेल गई थी, उसने दबी आवाज मे विमल से पूछा था।

"तू चिन्ता मत कर, और चुपचाप बैठा रह, .कुछ नही होगा।"

कहते हुये और सब लडको के साथ वह भी रूपा के सम्मान मे फिर एक बार अपनी सीट पर खडा हो गया।

रूपा ने कक्षा मे आकर पढाना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु मनीष और विमल का ध्यान उसकी ओर किंचित मात्र भी न था। वे लोग यही इन्तजार करते रहे कि कब पीरियड खत्म हो और रूपा टीचर के जाने के बाद वे इस पत्र को खोलकर पढें और इसका आनन्द लें। उनके

औत्सुक्य का भान् रूपा को न था। ...पीरियड खत्म होते ही वह अपना पर्स आदि लेकर कमरे से बाहर निकली तो उसी पलांश मे विमल भी मनीष को लगभग खीच कर बाहर ले आया।

"चल बाहर किसी पेड के नीचे बैठ कर इस पत्र का मजा लेगें !.... यहा तो लडके चैन नही लेने देगें।"

मनीष सहमति मे सिर हिलाकर विमल के साथ चल पडा। वे दोनो स्कूल प्रागण मे ही एक घने वृक्ष के नीचे बैठ गये और चोर निगाहो से इधर-उधर देखा। जब उन्हे कोई अपनी ओर मुखातिब हुआ नजर न आया तो विमल ने अपने नेकर की जेब से वो अन्तर्देशीय पत्र निकाल कर, खोल डाला। मनीष की उत्सुकतापूर्ण अनुज्ञा पर विमल उसे जोर-जोर से पढने लगा। .. लिखा था....

आदरणीय मम्मी ! . .मधुर स्मृति।

आशा है आप सब लोग वहा पर सानन्द होगें। पापा से कहिये, अब वो प्रसन्न रहा करें। उनके दिमाग पर मेरी शादी का जो बोझ था, आशा है अब उन्हे उससे मुक्ति मिल गई होगी।

'ये' पिछले रविवार को आये थे। इस बार शायद न आ सकें। नौकरी छुडवाने के स्थान पर मेरा यहा ट्रासफर करवाकर पापा ने अच्छा ही किया। अब यहा, कम से कम जीवन मे व्यस्तता तो है ! .निष्क्रियता यू भी मानसिक कशमकश की जननी होती है।

मम्मी ! एक बात लिखना चाह रही हू लेकिन मेरी कलम अवरुद्ध हुई जा रही है। कैसे लिखू ! . फिर सोचती हू, लिखे बिना भी, कही कोई अनर्थ न हो जाये ! .आप लोगो ने कैसे कैसे करके मेरा ब्याह रचाया है, ये मैं भी जानती हू ! . .फिर भी, ईश्वर को न जाने क्या मजूर है ! . ..मम्मी !. . मेरी सास कई बार कह चुकी है कि—तेरे पिताजी ने शादी के बाद फ्रिज देने को कहा था, उसका क्या हुआ ?"

मैं जानती हू मम्मी, कि आपको ये सब पढ कर कैसा लगेगा ! . क्या बीतेगी आपके दिल पर ! .लेकिन आप ये भी जानती हैं कि मेरा जैसा शॉक आब्जर्वर कब धक्का खाता है ! ये तो यहा रहते नही हैं। मेरे लिये स्थिति

प्रतिदिन असह्य होती जा रही है।....मैंने अपनी स्टेट इंश्योरेंस पालिसी से दोबारा लोन लेने की कोशिश की थी....लेकिन सफलता नहीं मिली।

मम्मी!....कभी-कभी सोचती हूँ....भगवान ने नारी को क्यों बनाया है?....क्या सिर्फ दुःख भोगने के लिए!....क्या सिर्फ तिरस्कार झेलने के लिये!....आपने सदैव यही शिक्षा दी है कि,—नारी जीवन पाया है, तो आत्मार्पण भी करो।....लेकिन मम्मी....अगर तब भी मान-सम्मान न मिले तो?"

खैर....छोड़िये इन बातों को।....अपने बारे में क्या लिखूं। शेष फिर।....पत्र का उत्तर शीघ्र दीजियेगा।....

आपके पत्र की प्रतीक्षा में

आपकी बेटी,

रूपा

"अरे!....ये तो मामला ही और निकला!"

विमल ने पत्र को आद्योपान्त पढ़कर कुछ अप्रसन्नता व्यक्त की।

"विमल....!"

"हूँ....।"

"यार, मेरी समझ में एक बात नहीं आती!"

"वो क्या?"

"हर मां-बाप अपनी हैसियत के अनुसार दान-दहेज देते हैं,....जबकि रूपा टीचर तो खूबसूरत, पढ़ी लिखी होने के साथ-साथ कमाऊ भी हैं!.... फिर भी लड़के वालों का पेट क्यों नहीं भरता?"....

"अरे, लालची हैं साले!....मैं सोच रहा हूँ, क्यों न एक बार अपन लोग रूपा टीचर से मिलें!"

"अरे मरवायेगा क्या!....छोड़....चल क्लास में ही चलते हैं!"

विमल मनीष के कहने पर वहां से उठकर तो चला आया, किन्तु उसके अन्तर में एक तूफान उमड़ पड़ा था उस पल। शायद वह इसी तूफान के वशीभूत होकर अपनी प्रिय रूपा टीचर के लिये कुछ न कुछ करने का संकल्प मन ही मन कर चुका था।

दिन पख लगाकर उड़ते जा रहे थे। विमल और मनीष उस पत्र के बारे मे सब कुछ भूल चुके थे। किन्तु एक बार जब लगातार तीन दिनो तक रूपा स्कूल नही आई, तो उस दिन विमल ने क्लास में बैठे-बैठे मनीष के सामने रूपा की खोज खबर लेने का प्रस्ताव रख दिया।

'मनीष !"

"हूँ"

"यार, रूपा टीचर तीन दिनो से स्कूल नही आ रही हैं।..क्यो न हम लोग उनके घर चलें ! ...कही उनकी तबीयत तो खराब नही हो गई है !"

मनीष को प्रतीत हुआ मानो विमल ने उसके मुँह की बात ही छीन ली हो। उसी पल दोनो मे आपसी "सहमति" हुई और दोनो चुपचाप क्लास से निकलकर रूपा के घर की ओर चल पडे।

विमल और मनीष ने जब रूपा के घर पहुचकर द्वार पर दस्तक दी तो एक प्रौढ सी महिला ने दरवाजा खोला। उसकी भाव-भगिमा से स्पष्ट था कि उसे इन लोगो का आना अच्छा नही लगा था।

"बोलो।"

"जी . रूपा टीचर का घर यही है ?"

"हा क्यो ?"

"ज जी....वो वो घर मे हैं ?"

प्रौढा द्वारा प्रदर्शित नाराजगी व अप्रसन्नता से विमल किंचित् सहम गया था।

"नही है।"

भारी-भरकम डील डौल की स्वामिनी उस स्त्री ने सक्षिप्त किन्तु रूखा सा उत्तर दिया।

"क्या कही बाहर गई हैं ?... हम लोग उनके स्कूल से आये हैं !.... तीन दिनो से वो स्कूल नही आ रही हैं ! ....हमने सोचा . .कही तबीयत आदि खराब न हो। . .तो....तो क्या वो कही बाहर गई हैं ?"

"हा....वो एक शादी मे बाहर ही गई है।"

"जी कब तक लौटेगी ?"

"दो तीन दिनो मे।"

और इसी सक्षिप्त उत्तर के साथ एक धमाके से, उस महिला ने द्वार बन्द कर लिया। दोनो तरूण उस औरत के व्यवहार पर हतप्रभ थे। जितने स्नेह और अपनेपन से ये लोग रूपा से मिलने आये थे। यहा आकर इस अभद्र महिला के अभद्र व्यवहार से उन्हे बडा अटपटा लगा। विमल को तो इस व्यवहार पर क्रोध भी आया, किन्तु वह सयम की चादर से स्वय को ढापे रहा। आश्चर्य मिश्रित क्रोध लिये वे स्कूल लौटने लगे तो अप्रत्याशित रूप से उनके सिर पर चूडियो के चन्द टुकडे आकर गिरे।

"अरे !... विमल ये क्या !!"

मनीष ने चूडियो के उन टुकडो को हाथो मे उठाकर अचम्भित किन्तु आशकित नजरो से ऊपर देखा। लेकिन वहा पर उसे कोई भी दिखाई न दिया।

"मैं समझ गया मनीष !....ऊपर जरूर कोई न कोई है !....देख, तू कन्धो का सहारा दे, . मैं इस खिडकी के छज्जे पर खडा होकर देखता हूँ.... ऊपर कौन है, जिसने हम लोगो पर ये काच के टुकडे फैंके हैं।"

"लेकिन यार !.. .किसी मुहल्ले वाले ने देख लिया, तो क्या होगा ? ....कही ऐसा न हो, हम लोग किसी उलझन मे फस जाये !"

"अरे तू चिन्ता मत कर .इस टीकाटीक दोपहरी मे सब लोग अपने-घरो मे हैं।...कोई बाहर दिखाई दे रहा है क्या तुझे? .बोल !"

विमल ने चारो ओर देखा और मनीष की ओर से किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह खिडकी पर चढ गया। मनीष ने भी उसे अपने कन्धे का सहारा दिया, जिससे वह खिडकी के छज्जे पर खडा हो कर छत पर देखने लगा। दो क्षण मे छत को देखकर वह तत्क्षण जमीन पर कूद पडा।

"क्यो क्या हुआ ?"

मनीष ने उत्सुकता से पूछा।

"मनीष ! गजब हो गया यार !"

"बोल तो सही !... हुआ क्या ?"

"अरे मुझे तो पहले ही शक हो गया था। ...कि . .ये साली बुढ़िया हम लोगो से झूठ बोल रही है।"

"क्या मतलब!"

मनीष का औत्सुक्य प्रतिपल द्विगुणित होता जा रहा था।

"अरे रूपा टीचर ऊपर ही हैं उन्हे रस्सियो से बाध रखा है इन कमीनो ने! मैंने अपनी आखो से देखा है वह रस्सियो से बधी हुई धूप मे पडी हैं। उनके मुह मे भी कपडा ठुसा हुआ है।"

'हे भगवान् ये कैसा न्याय है तेरा विमल अब! अब क्या होगा! हमे क्या करना चाहिये!"

"चलो भागकर स्कूल चलते हैं।'

"स्कूल! रूपा टीचर को ऐसी स्थिति मे छोडकर?"

मनीष ने हैरत से कहा था।

"अरे तुम चलो तो सही! ये वक्त बातें करने का नही है।'

और विमल तथा मनीष बेतहाशा भागते हुए स्कूल चले आये। कक्षा मे उस समय कोई टीचर न था। हाफते हुये, उन दोनो ने जब कक्षा मे प्रवेश किया, तो वहा उपस्थित सभी लडको का ध्यान उन्ही की ओर केन्द्रित हो गया। किन्तु विमल ने अपनी श्वास सामान्य होने का भी इन्तजार नही किया और कक्षा मे सब लडको को सम्बोधित करना प्रारम्भ कर दिया था।

'साथियो! अपनी रूपा टीचर, जो पिछले तीन-चार दिनो से स्कूल नही आ रही है न! हम लोग अभी उनके घर गये थे। वहा उनकी सास ने हमे बताया कि रूपा टीचर शादी मे गई हुई हैं। लेकिन, आप लोगो को जानकर आश्चर्य होगा, कि हमने उन्हे वही, अपने ही घर की छत पर रस्सियो से बधे हुये देखा है! हम लोग ये भी जानते हैं, कि ये सब उनकी शादी म दिये गये दहेज को लेकर हुआ है! मैं चाहता हू हम सब लोग अभी उनके घर चलें और अपनी टीचर को उन वहशियो, कमीनो

के चगुल से छुडाय। क्या क्या आप लोग इस काम मे हमारा साथ देने के लिये तैयार हैं?"

विमल का इतना कहना था कि उस कमरे म उपस्थित सभी लडके जोश-खरोश के साथ बुलन्द आवाजा मे चिल्लाने लगे थे हा चलो! हम सब तैयार हैं।

देखते ही देखते पचास साठ लडको का समूह अपनी कक्षा से निकल कर चल पडा। उस ओर, जहा उनकी प्रिय टीचर किसी बहलिये के शिकजे मे फस कर यातना व सैलाब मे डूब उतरा रही थी। उन, इन्सान के रूप म छिपे भेडियो को सबक सिखाने, जो चादी के चन्द टुकडो के लिये किसी भी दूसरे इन्सान के प्राण लेने म भी नही हिचकिचाते। विद्यालय परिसर मे से गुजरते जो जो छात्र राह मे मिले, वे उस समूह मे शामिल होते गये। होते गये।

लडको के विशाल झुण्ड के साथ रूपा के घर पहुचकर जब विमल ने जोश-खरोश के साथ दस्तक दी, तो दरवाजा पुन उसी औरत ने खोला। विमल और मनीप उस औरत से कोई बात किये बिना कमरे मे समा गये और अन्दर के बरामदे म से होते हुये सीढियो पर चढ गय। वह प्रौढा हतप्रभ सी, ये सब नजारा देखती रही। इसी के साथ लडको की क्रुद्ध भीड ने उस महिला के साथ साथ उसके पति को भी घेर लिया था जो शोर गुल सुनकर द्वार पर चला आया था।

छत पर पहुचकर विमल और मनीप ने जो हृदयविदारक दृश्य देखा, तो उनकी आखें साश्रु हो उठी थी।

उन लोगो ने फुर्ती से रूपा के मुह मे ठूसा गया कपडा निकाला और उसके जिस्म पर बधी रस्सिया खोल डाली। धूप से उसका शरीर न केवल स्याह पड गया था, अपितु खाल झुलसने से कही कही फफोले भी पड गये थे। बन्धन मुक्त होते ही रूपा ने फफक फफककर रोते हुय उन दोनो को अपनी बाहो मे भर लिया। उसका कण्ठ अवरुद्ध हो रहा था इस लिये वह मनीप और विमल से एक शब्द भी न बोल सकी। वे दोनो सहारा देकर निढाल हुई जा रही रूपा को नीचे लेकर आये तो रूपा ने रसोई की तरफ

इशारा किया, जहां पहुंचकर, खाने को जो कुछ भी मिला, वह उस पर टूट पड़ी। उसे यूं खाते देखकर स्पष्ट हो गया था कि उसे दो-तीन दिन भूखा रखा गया था। रसोई में देखने पर विमल और मनीष को जो कुछ भी मिला, रूपा को बड़े स्नेह से खिलाकर उसे पानी पिलाया और फिर सहारा देकर बाहर ले आये।

उन लोगों को यह देखकर आश्चर्य के साथ प्रसन्नता भी हुई की क्रुद्ध भीड़ ने रूपा के सास-श्वसुर को मार-मार कर उनकी हालत दयनीय बना दी थी।

इसी-बीच शायद किसी ने इस घटना की खबर पुलिस को दे दी थी।... और सूचना मिलते ही पुलिस वहां पहुंच चुकी थी। पुलिस यदि उस समय वहां न पहुंचती तो लड़कों की क्रुद्ध भीड़ न जाने उस दम्पति का क्या हश्र करती! पुलिस इन्सपेक्टर ने आते ही उन दोनों को हिरासत में ले लिया था। ये सब देखकर विमल और मनीष की आंखें विजय के उन्माद से चमक उठी थी। विमल ने इन्सपेक्टर साहब के इस कृत्य को सराहते हुये कहा था।

"इन्सपेक्टर साहब,....ले जाइये इन कमीनों को!....ये समाज के दुश्मन हैं!....देश के दुश्मन हैं?...पैसे के लालच में ये इन्सान की जान तक लेने से नहीं चूकते। जब तक ऐसे असामाजिक लोग हमारे समाज में रहेंगे, दहेज-दानव हमारी बहनों, बेटियों और बहुओं के प्राणों की आहुति लेता रहेगा।....हमारे देश में आज भी ऐसे कुटिल लोग हैं, जो जोंक बन कर हमारे राष्ट्र का खून चूस रहे हैं।.... हमें ऐसे लोगों को चुन-चुन कर खत्म करना है!"

"बेटे!....हमें नाज है तुम जैसे देश के भावी कर्णधारों पर!.... तुमने आज कानून की मदद करके जिस प्रकार अपनी टीचर के प्राणों की रक्षा की है....मैं कोशिश करुंगा,....सरकार इसके लिये तुम्हें इनाम दे।"

इन्सपेक्टर साहब विमल और मनीष के कंधों को थपथपाकर, उन्हें शाबाशी देकर, अपनी जीप में जाकर बैठ गये, जिसमें रूपा के सास-श्वसुर

को पहले ही बैठाया जा चुका था !....और वह जीप धूल उड़ाती वहां से चली गई।

"अच्छा भाइयो....अब आप, सब लोग भी स्कूल चलिये !....रूपा दीदी....आप आराम कीजिये !....हम लागों को आप हमारे जीजाजी का पता दे दीजिये, हम उन्हें टेलीग्राम दिये देते हैं।"

रूपा का अश्रु बांध फिर एक बार ढह गया था ।....उसने विमल और मनीप को अपनी बाहों में भर कर उन पर चुम्बनों की बौछार कर दी थी।



"नो योर ऑनर, ...ये मनघडन्त कहानी है। ...सच्चाई ये है, कि वारदात की उस शाम कुसुम देवी जब अपनी पडोसन कुमारी सुनीता को साथ लेकर मन्दिर मे पूजा करने पहुची, तो मन्दिर मे ही अपने साथियो के साथ बैठ कर शराब पी रहे मुल्जिम उमेश ने, उन्हे मन्दिर मे जाने से रोका।.... कुसुम देवी द्वारा जब उन्हे रोके जाने का कारण पूछा गया तो उसने लडखडाती जबान से बताया कि सुनीता नीची जाति की लडकी है। इसे मन्दिर मे प्रवेश करने की अनुमति नही है! ....तब कुसुम देवी ने घृणित से चेहरे से व्यग करते हुये कहा—'वाह! तुम इस मन्दिर मे बैठ कर शराब पी सकते हो!....तुम्हारा कुत्ता यहा बैठकर तुम्हारे द्वारा खा-खा कर फैंकी जा रही 'मीट' की हड्डिया चबा सकता है .. और ये इन्सान.. .इस मन्दिर मे प्रवेश नही पा सकता! . क्योकि ये अछूत है ...और तुम यहा के पुजारी के लडके हो?... योर ऑनर .. इस प्रकार बात बढ गई और दीपावली की वो झिलमिलाती रात कुसुम देवी के जीवन को अधकार के भँवर के हवाले कर गई। ....कुसुम देवी के विरोध करने पर इसने अपने साथियो के सहयोग से उन्हे पकड कर उनके बालो मे बम की लडियाँ बाध कर आग लगा दी।... ये हादसा मुल्जिम के इसी कारनामे का परिणाम है।.. कुसुम देवी के अस्पताल मे कलमबद्ध किये गये बयान अदालत के समक्ष पेश किये जा चुके हैं।... अब मैं इस घटना के कुछ चश्मदीद गवाहो को अदालत के समक्ष पेश करने की इजाजत चाहूगा।"

"इजाजत है।"

न्यायाधीश महोदय की अनुमति पाकर वकील साहब के इशारे पर सुनीता विटनैस बॉक्स मे पहुच गई। पूर्ण रूप से निर्भीक होकर, आत्मविश्वास के साथ। गीता पर हाथ रखकर उसे विधिवत् सच बोलने की शपथ दिलाई

गई, उसके बाद उसने अपना बयान दिया। इस प्रकार मुकदमा कई दिन चला और अन्ततोगत्वा न्यायाधीश महोदय ने उमेश को एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनादी थी।

उमेश दादा के आतंक से सारे मुहल्ले वाले परेशान है। दूकानदारो से मुफ्त मे माल छीनकर तोड फोड करना, राह चलतो को छेडना और मुहल्ले की बहू-बेटियो के साथ अभद्र, अश्लील व्यवहार करना उसके प्रिय शौक है। उसके वृद्ध पिता भी अपने इकलौते बेटे की हरक्तो से बहुत चिन्तित व दुखी है। आस पास के निठल्ले लडको की टोली ऊधम मचाने मे उसका साथ देती है। इसलिये उसके हौसले बुलन्द होते जा रहे हैं। सुनीता के पिता शंकर दयाल एक साधारण अध्यापक थे। उन्हे सुनीता का उमेश के खिलाफ अदालत मे बयान देना सालने लगा था।

"तूने उमेश के खिलाफ अदालत म बयान देकर अच्छा नही किया बेटी!...अब, अब जब वो जेल से रिहा होकर आयेगा तो हम लोगो का जीना दुरूह कर देगा।"

"इन्साफ की कुर्सी पर बैठकर न्याय करने वाले का दायित्व जितना महत्त्वपूर्ण होता है, उससे कही अधिक महत्त्वपूर्ण दायित्व गवाहो का होता है पिताजी! और फिर, जुल्म सहना भी तो उतना ही भीषण अपराध है जितना जुल्म करना।"

"लेकिन बेटी तालाब मे रहकर मगरमच्छ से वैर पालना भी तो खतरनाक है!"

'पिताजी, दुष्ट प्राणी केवल अपने बैरी पर ही आक्रमण नही करता वो तो किसी को भी अपने शिकजे मे लेकर हानि पहुचा सकता है! ऐसे मे उसे शक्तिविहीन करना नितान्त आवश्यक हो जाता है! और फिर कोई क्रान्तिकारी आन्दोलन चलाने के लिये, आहुति तो देनी ही पडती है..! एक बीज स्वय को मिट्टी के गर्भ म दबाकर ऐसे छाया-दार वृक्ष का सूत्रपात कर जाता है, जो बरसो तक जग को छाया देता रहता है। अपनी मिति-रक्षा

हेतु कभी मुझे अपने जीवन का भी बलिदान करना पड़ा तो कोई गम न होगा। ....बचपन मे आप ही ने तो सिखाया है पिताजी, की अपमानजनक, लम्बी जिन्दगी से सम्मानित जीवन चन्द लमहो का भी श्रेयस्कर है !"

पिता पुत्री मे मतैक्य न हो सका था। शंकर दयाल जी ने निश्चय किया कि वे उमेश के जेल से छूटने से पहले ही अपनी बिन मा की दोनों बेटियो, सुनीता व अनीता के हाथ पीले कर डालेंगे।....इसके लिये उन्होने युद्धस्तर पर प्रयास भी आरम्भ कर दिये थे। ...लेकिन आर्थिक विक्षिप्तता और दहेजदानव उनके प्रयत्नो को विफल करते गये....करते गये।... सन्तोषी शकर दयाल को, जीवन मे पहली बार आर्थिक अभाव ने अभिघात किया था।

एक वर्ष का अन्तराल समाप्त होने पर उमेश जब कैद से छूटा तो उसके आक्रोश का ज्वालामुखी फूट पड़ा।... और जिस सुनीता का अछूत होने के कारण, उसे मन्दिर मे प्रवेश करना गवारा न था, उसी के घर मे अपने साथियो के साथ दिन–दहाडे घुसकर उसने, सुनीता के उजाले दामन को स्याह कर डाला। आतंकित, सहमे से मुहल्ले वाले पाषाण–प्रतिमा बने, पथराई आंखो से ये अनर्थ होता देखते रहे। उन सन्त्रस्त गलियो मे उठी जुल्म की भभक ने एक और फूल को झुलसा दिया था।

उमेश को फिर एक वर्ष का कारावास हो गया, लेकिन सुनीता का मन असहायता के अहसास से बुझ गया। उसे अपनी इज्जत पर हुये हमले से अधिक शर्म इस बात पर थी, कि दिन–दहाड़े वो लम्पट घर मे घुस कर उसका जीवन बर्बाद कर गया और मुहल्ले के सहस्त्रो "युवा" और "मर्द" लोग तमाशबीन बने देखते रहे, वे सहस्त्रो "मर्द" भी अकेले उमेश के समक्ष दीवार बन जाने का साहस न जुटा पाये। उनकी कायरता पर अधिक लज्जित व हत-प्रभ थी वह !... लोक लाज के कारण उसने पढाई भी छोड दी थी। समाज मे अपने और अपनी बिरादरी के मान–सम्मान को, अपनी धूमिल मिति को पुनः स्थापित करने के लिये उसने जो क्रान्ति लाने का स्वप्न सजोया था, वो चूर चूर होकर बिसर गया था। उसे निराशा इस बात से थी कि इस

महायश मे वह अकेली रह गई थी ।....नितान्त अकेली ।....निपट अकेली । स्वय को अकेली पाकर उसका मन अवश्य बुझ गया था, किन्तु उसने स्वय को इस जेहाद मे अकेले लडने के लिये तैयार करने की प्रक्रिया को अबाध गति से गतिमान् रखा था । उसके पिता उसकी इस आन्तरिक 'गति' से अनभिज्ञ थे । वे चाहते थे कि सुनीता कोई काम करे और वक्त का मरहम उसके घावो को तिरोहित कर दे ।

"बेटी !""यू घर मे पडे पडे जी और खराब ही होगा ।""यदि तू अब अपनी पढाई जारी रखना नही चाहती, तो किसी छोटे मोटे स्कूल मे, छोटे बच्चो को पढाने का काम ही क्यो नही कर लेती !" 'कम से कम तेरा मन इस ओर से तो हटेगा !"

"आप कहते हैं तो ये भी कर देखती हू पिताजी ।"

सुनीता ने सहमति प्रकट की तो शकर दयाल जी ने अपने एक जान-कार साथी के स्कूल मे उसे भेजा । लेकिन वहाँ उसके अचरज का ठिकाना न रहा, जब शकर दयाल जी के मित्र ने ही उसे विस्फारित नेत्रो से देखा ।

"तो तुम हो शकर दयाल की बेटी !"

"जी""!"

सुनीता ने शालीनता से कहा ।

"चर्चे तो तुम्हारे बहुत सुने हैं, लेकिन तुमसे साक्षात्कार आज ही हुआ है !"

"जी""ऽ ऽ !"

सुनीता तत्क्षण किंचित चौकी, तो शकर दयाल जी के मित्र ने जैसे उसे आईना दिखा दिया ।

"तुम जैसी बदनाम लडकी को हम अपने स्कूल मे कैसे रख सकते हैं ?· · हमे अपने स्कूल की साख नही गिरानी है ! . .जो लडकी स्वय अपना चरित्र निर्माण न कर सकी, उससे विद्यार्थियो के उज्जवल भविष्य निर्माण की आशा कैसे की जा सकती है ?"

सुनीता को काटो, तो खून नही ! ये उसके लिये अपमान की पराकाष्ठा थी। यहाँ तक कि अब सुनीता की बदनामी की छाया उसकी छोटी बहिन अनीता के जीवन पर भी पड़े बिना न रह सकी। उसे भी अपने सहपाठियो के समक्ष कई बार अपमानित होना पड़ा। इन सब घटनाओ को शंकर दयाल जी मूक दर्शक बने असहाय से, देखते रहे। उनका अन्तर्द्वन्द्व प्रति दिन द्विगुणित होता जा रहा था।

वक्त पख लगाकर उड़ता गया और उमेश जेल से रिहा होकर आ गया।....किन्तु उसकी उच्छृंखलता व कुटिलता मे कोई कमी न आई थी। अब भी उसके चेहरे पर पश्चाताप की शिकन के स्थान पर इन्तकाम की आकांक्षा ही थी। उसके पिता पण्डित द्वारका प्रसाद ने उसे कई बार समझाने का प्रयास किया था।

"बेटा !....तेरे कुकर्म तुझे दो बार जेल भिजवा चुके हैं। अब भी तू सन्मार्ग तज कर, धर्मच्युत क्यो है ?....आखिर तू चाहता क्या है ?....अपने पिता के बुढापे का क्या हश्र करना चाहता है तू ?...तुझे अपने पिता का जरा भी खयाल नही है ?...दुनिया वालो के बच्चे जवान होकर मा बाप के बुढापे की बैसाखी बनते हैं....और तू !....तू मुझ वृध्द, असहाय के लिये नासूर बना हुआ है !"

"आपने भी तो मेरे दादाजी को कितना दुःख दिया है पिताजी !"

उमेश के इस प्रतिवाद से अचंभित हो गये थे पण्डित द्वारका प्रसाद।

"मैंने !....मैंने क्या दुःख दिया है तेरे दादाजी का ?"

"अपने पूर्वजो के जिस मन्दिर मे उन्होने अपनी जवानी मे किसी नीची जाति वाले को घुसने नही दिया था....आपने न जाने किन लोगो की बातो मे आकर, सब तरह के लोगो को मन्दिर मे घुसने की इजाजत देकर, सारे मंदिर को भ्रष्ट कर डाला।....इसी गम मे तो उनके प्राण पखेरू उड गये थे !"

"भगवान् तो सर्वव्यापी हैं मूर्ख ! सब जगह विद्यमान् हैं ! भला उनके दर्शन पर अंकुश लगाने की हम इन्सानो की क्या बिसात है !"

"हुम शताब्दियो से जो बुजुर्ग करते आये हैं वो गलत है और आप जो आज कर रहे हैं वो सही है ?

उमेश की आवाज मे व्यग का पुट था।

'अगर किन्ही अज्ञात कारणो से कोई कुप्रथा चल पडे तो क्या उसके बारे म जानकारी होने पर भी उसे सुधारा नही जाना चाहिए ! आखो देखी मक्खी निगली जा सकती है भला ! और फिर तुम पहले स्वय को तो देखो ! तुम खुद वहाँ बैठ का शराब पीते हो मास खाते हो जानवरो को अपने साथ रखते हो ! फिर इसान के प्रवेश पर एतराज करने वाले तुम होते कौन हो ! खाली दिमाग शैतान का घर होता है निखट्टू हो न ! उल्टी सीधी बात सोचेगे ही ! अरे अपना भविष्य बनाने के बारे मे तुम क्यो नही सोचते ! यदि तुम्हारा यही हाल रहा तो वो दिन दूर नही जब तुम्हारे खाने के भी लाले पड जायगे !

ओफ्फो पिताजी ! आप तो बेकार ही चिता कर रहे हैं ! इतना विशाल व प्रसिद्ध मन्दिर है अपना। इसम जितना चढावा आता है उससे हम लोग ठाठ बाट से रह तो रहे हैं ! आप क्या चाहते है कि मैं कोल्हू के बैल की तरह दिन रात पिस कर अपने हँसने खेलने के दिन बर्बाद कर लू ?

उमेश की इस बात पर द्वारका प्रसाद जी व्यग से हँसे बिना न रह सके।

हू हँसने खेलने के दिन ! सारी दुनिया को रुलाकर तुम्हे एक पल की भी हँसी मिले तो लानत है ऐसी हँसी पर !



एक दिन जब पण्डित द्वारका प्रसाद जी अपने पूजागृह म थे एक बच्चा बेतहाशा भागता हुआ उनके पास आया।

"पण्डित जी !....पण्डित जी !!"

उसके घबराये हुये स्वर को सुनकर पण्डित जी विस्मय से दौड़ दौड़ पूजागृह से बाहर निकल आये।

"क्या बात है बेटा ?"

"पण्डित जी...वो....वो पुलिस उमेश भैया को अस्पताल ले गई है।"

"अस्पताल !!"

किसी भावी अनर्थ की आशका से भयभीत हो गये थे पण्डित जी। उनके जैसे दिल-ओ-दिमाग के तोते उड़ गये थे उस पल।

"हाँ पण्डित जी।"

"लेकिन हुआ क्या बेटा ?"

"कुछ लडको से उनकी लड़ाई हो गई थी।....लडको ने उन्हे डण्डो और पत्थरो से लहूलुहान कर दिया था।....वो...वो बेहोश हो गये थे।....और बेहोशी की हालत मे सब लोग उन्हे रास्ते मे ही पडा छोड़ गये थे।....उनके माथे और आखो से बहुत खून बहा है पण्डित जी...आप ....आप जल्दी से अस्पताल चलिये।"

पण्डित द्वारका प्रसाद जी पर वज्रपात हो गया था। वे अपना सब काम-काज छोडकर अस्पताल पहुचे तो वहाँ डॉक्टर नारग ने घोषणा कर दी थी, कि उमेश की नेत्र ज्योति सदैव के लिये चली गई है।....अब वो इस दुनिया को कभी नही देख सकेगा।....पण्डित जी पर एक और पहाड टूट पडा। उनकी वृद्धावस्था की सध्या पूर्ण रूप से गहन अन्धकार मे डूब गई। इस दुर्घटना से मुहल्ले वालो मे एक अदृश्य प्रसन्नता की लहर व्याप्त हो चुकी थी। आन्तरिक रूप से सभी प्रसन्न थे। "अच्छा हुआ....सारे मुहल्ले मे आतक फैला रखा था !...आखिर हर इन्सान को अपने कर्मों का फल तो भोगना ही पडता है !....यही .. इसी धरती पर।....इसी जनम मे।"

उमेश के घाव लगभग भर चुके थे। दो चार दिन मे उसे अस्पताल से छुट्टी मिलने वाली थी। पण्डित जी चिन्ता मे घुले जा रहे थे।....अब

कैसे कटेगा उमेश का अन्धकारमयी जीवन ?....कौन उस जैसे अपाहिज को अपनी लड़की देगा ?....कौन लड़की उस अन्धे की आंखें बन कर जीवन गुजारने को तैयार होगी ?....कैसे चलेगा उनका वंश ?....अपने मन में निरन्तर कौंधते इन प्रश्नों का उन्हें कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था।

"मरीज को ऑपरेशन के लिये ले जाना है,....प्लीज आप लोग बाहर चलिये।"

नर्स ने जब उस वार्ड में प्रवेश करके पण्डित द्वारका प्रसाद जी और उमेश के कुछ दोस्तों से बाहर जाने का अनुरोध किया तो वे सभी हतप्रभ हो गये।

"ऑपरेशन !!"

पण्डित जी को जैसे अपने कानों पर विश्वास न हुआ था उस पल !

"जी !"

नर्स ने अपनी बात की पुष्टि कर दी थी। पूरे आत्म विश्वास के साथ।

"लेकिन....डॉक्टर नारंग तो कह रहे थे, अब एक-दो दिन में इसे अस्पताल से छुट्टी दे देंगे ?....अब यह ऑपरेशन किस लिये ?"

इससे पहले कि नर्स कुछ बोलती, स्वयं डॉक्टर नारंग उस कमरे में प्रविष्ट हुये।

"पण्डित जी,....हमारे एक आई स्पेशलिस्ट आज ही यहां पहुंचे हैं, ...उन्होंने यही सलाह दी है।....आप निश्चिन्त रहिये, ईश्वर ने चाहा तो अच्छा ही होगा।....लीजिये....आप इस पर अपने हस्ताक्षर कर दीजिये।"

डॉक्टर नारंग के इशारे पर उनके साथ आई एक अन्य नर्स ने एक पैड पर रखा कागज और पैन पण्डित जी की ओर बढ़ा दिये....और विस्मित से पण्डित जी ने चुपचाप उस पर हस्ताक्षर कर दिये।

तीन घन्टे के कष्टप्रद इन्तजार के बाद ऑपरेशन थियेटर से निकल कर डॉक्टर नारंग ने घोषणा की, कि उमेश की आंखों का एक सफल ऑपरेशन किया गया है।... उसकी नेत्र ज्योति लौट आई है। डॉक्टर नारंग

की इस अभूतपूर्व उपलब्धि से वहाँ प्रसन्नता की एक लहर दौड़ गई। पण्डित जी के दिल का बोझ हल्का हो गया था तत्क्षण। उनकी आखें प्रसन्नता से साश्रु हो उठी थी। उन्होने कृतज्ञता प्रकट करते हुये, डॉक्टर नारग को बधाई देने के उपरान्त इस अप्रत्याशित सफलता का रहस्य जानना चाहा, तो उनके चेहरे पर फैली सफलता की आभा पलत झपकते ही तिरोहित हो गई। उन्होने अश्रुपूरित नेत्रो से बताया—"पण्डित जी, दरअसल यहा कोई आई-स्पेशलिस्ट नही आया है।....ये .. ये सब इस पत्र का कमाल है।"

"पत्र !!"

पण्डित जी आश्चर्य चकित से उस कागज के टुकडे को देखने लगे जो डॉक्टर नारग ने उनकी ओर बढाया था।

"आप सुनीता को जानते हैं न !"

"हाँ हाँ....वो अपने शकर दयाल जी की लडकी !"

सुनीता का नाम आते ही उनके चेहरे पर अपराध-बोध झलकने लगा।

"जी हाँ....ये पत्र उसी का है... अन्तिम !....उसने आत्म-हत्या कर ली है।"

"आत्महत्या !!"

"लेकिन... लेकिन... वो...।"

"आप इसे पढ लीजिये ..सब कुछ समझ जायेंगे।"

डॉक्टर नारग की सलाह पर, हतप्रभ से पण्डित द्वारका प्रसाद जी वो पत्र पढने लगे, जिसे वहाँ उपस्थित सभी लोग बडे ध्यान से सुनने लगे। लिखा था—

आदरणीय पिताजी,

मेरी जिन्दगी अब आपके लिये नासूर बन कर रह गई है। मैं नहीं चाहती कि मेरे उजडे हुए, स्याह गुलशन को आपके खून-पसीने का सिंचन मिले।

मेरी अन्तिम इच्छा यही होगी कि मेरी आखें आप उमेश को ही दे दें। मुझे विश्वास है कि उमेश जब मेरी आखो से ये दुनिया देखेगा, तो उस समय उसकी आखो मे उच्छृखलता व आक्रोश के स्थान पर शालीनता व ममता होगी। ...और वो सन्त्रस्त गलियाँ, जिनके सन्त्रास की तपिश से उसमे खिले फूल मुरझा जाते हैं,....फिर प्रत्येक फूल की अरुणिमा को सहेज कर रख सकेगी।

आपको याद होगा, मैंने एक बार कहा था कि—एक बीज स्वय को मिट्टी के गर्भ मे दबाकर ऐसे छायादार वृक्ष का सूत्रपात कर जाता है, जो बरसो तक जग को फल-फूल और छाया प्रदान करता रहता है। ..आज मैं भी स्वय को मिट्टी म दबा रही हूँ। मुझे आशा ही नही अपितु पूर्ण विश्वास है कि मेरे बीज से प्रस्फुटित कल्पतरु युगो-युगो तक जन-सेवा करता रहेगा।

अपनी इस अभागिन बेटी को क्षमा कर दीजिये।

आपकी बेटी,

सुनीता।

आखो के रूप मे नव-जीवन पाकर उमेश, सुबकते शकर दयाल जी के पैरो मे गिर पड़ा था। शकर दयाल जी के दिल का एकमात्र बोझ उनकी छोटी बेटी अनीता को उमेश ने अपनाने का सकल्प ले लिया था।



मरीचिका

चचल-चपल नयनो की स्वामिनी, लावण्यमयी, कामिनी, .. ये रूपसी अब मेरी पत्नी है। एक दिन था, जब मैं इसकी एक झलक पाने को आतुर रहता था। जिस दिन इस रूप-रश्मि मे नहा न लेता, मैं सूरजमुखी, खिल न पाता !....और आज !....आज वही रूप लावण्य मेरे साथ, मेरे पलंग पर निर्वस्त्र पड़ा है ..और मेरे चचल मन से, उमगो का तूफान कोसो दूर है। मेरी नजर उसके जिस्म पर नही अपितु उस "क्लॉक" पर टिकी है, जिसने अभी-अभी अलार्म बजाकर मेरे सपनो के शीशमहल को तहस-नहस कर दिया है। उनींदा हुआ मैं, इसके चेहरे पर अलार्म का कोई असर न पाकर, ढेर सा साहस बटोर कर इसे उठाने का प्रयास करता हूँ।

"सीमा !....सीमा उठो,....छः बज गये हैं।"

वह कुलबुलाई। लेकिन नींद ने उसका दामन नहीं छोड़ा। ऐसे ही दो तीन प्रयास और भी, जब विफल हुये, तो मैं बेचैन हो उठा। सात बजे से मेरी फैक्ट्री की शिफ्ट शुरू हो जायेगी,....और छ बजे तक सीमा की नींद ही नहीं खुली है !....आज फिर देर से फैक्ट्री पहुँचू गा !....फिर वही बॉस से खिटखिट। मैं नही चाहता कि बॉस के चेम्बर मे पहुँचकर फिर उन्ही सवादो की पुनरावृत्ति हो, जिन्हे एक बार सुनकर मैं तिलमिला उठा था।

"मनीप !....आज तुम फिर देर से आये हो !"

"सर,....वो....दरअसल !"

"सर....नई-नई शादी जो हुई है !"

बॉस के पी ए. को अपना पक्षधर पाकर मैंने अपने चेहरे पर पुते अपराध बोध को खिसियाहट मे बदल कर धो डालना चाहा, लेकिन बॉस की तनी हुई भवें मेरे हौसले पस्त कर गई।

"तुम रोज-रोज शादी करोगे, तो इसका मतलब ये तो नही कि....
रोज-रोज देर से आने की छूट दी जाये !!"

मुझे काटो तो खून नही । निरुत्तर हो गया था मैं उस पल । जी किया इस अफसर की कनपटी पर एक घूंसा जड दूं ।... दूसरो की खुशियो से जलता है ये ! उस समय तो मैं वहां से चला आया .लेकिन ये प्रश्न मेरे अन्तर को तब ही से सालता रहा है । "क्या वास्तव मे मैंने दूसरी शादी करके अपराध किया है ?.. .और इसी प्रश्न के मानिन्द मेरे स्मृतिपटल पर रश्मि का मोहक चेहरा हर पल तैर तैर जाता है .क्या वास्तव म उसके साथ अतिशय अत्याचार हुआ है ?.. .कैसे कटता होगा उसका एकाकी जीवन ? उसकी जिन्दगी मे, अब तो नीरसता ने विकराल रूप धारण कर लिया होगा ! .आज की नारी चाहे शिक्षित है, सुरक्षित आर्थिक धरातल पर खडी है, हर क्षेत्र म पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने मे सक्षम है, .फिर भी अबला है ! आज भी उसे पुरुष के आश्रय की आवश्यकता है। प्रकृति प्रदत्त उसके कोमल व्यक्तित्व की रक्षा पिता, पति अथवा पुत्र के सरक्षण मे ही सम्भव है।, तिस पर परित्यक्ता ! उसे तो समाज यू भी सामान्य नजरिये से नही देखता !, फिर ऐसी परिस्थितियो मे तो उस पर किसी न किसी प्रकार का लाछन लगना अवश्यभावी है । पुरुष प्रधान समाज मे ऐसी स्त्री पर जाने कैसी-कैसी नजरें पडती होगी !

"थोडी देर इसे और सोने दूं ।" यही सोचकर मैं बिस्तर से उठकर नित्यकर्म से निवृत्त होने मे लीन हो गया ।

बाथरूम मे मेरा कोई कपडा न था । बॉक्स रूम मे आकर बक्से मे से अडरवियर बनियान निकाले और बक्से पर बेनरतीब से पडे शर्ट पैन्ट उठाकर बाथरूम मे ही चला आया। अचानक बाथरूम की तिखाल मे ठूंसी हुई तौलिया पर ध्यान गया। तौलिया सीलन मे पडे रहने से बदबू छोडने लगा था। सब बातो को अनदेखा करके झटपट नहा कर पैन्ट चढाया, तो उसमे बटन नही था। न जाने क्यो, उस पैन्ट को देखकर फिर एक बार रश्मि मेरे स्मृतिपटल पर दृश्यमान हो गई। चुलबुली सी। मुस्कुराता चेहरा लिये।

"ऐ श्रीमान् जी ! अब उठना नही है ! सवा छः बज रहे हैं ! चलो अब अच्छे बच्चो की तरह बाथरूम मे पहुचो ।. मैंने सब कपडे और तौलिया रख दिया है ।....बच्चो की तरह पैन्ट के बटन तोड लाते हो !....टाक दिये

है ।....अब उठो ।"

"हे भगवान् ऐसी बीवी किसी को न देना, जो सेना के कमाण्डर की तरह हरदम हुकुम चलाती रहे ।....आखिर उठा ही दिया न !"

"मैं चली जाऊँगी न !....तब पता लगेगा !....सब काम किया कराया मिल जाता है न !"

"क्यों !... तुम कहीं जा रही हो क्या ?"

"हां ..।"

"लेकिन कहां ?"

"मायके ।"

"वैरी गुड, डार्लिंग कम से कम एक महीना रह कर आना वहां,.... तुम्हारी अनुपस्थिति मे चैन से तो सो सकूंगा मैं सवेरे के समय !''

"फिर तो, जब तक मैं मायके से लौटकर आऊंगी....तुम मुझे बेरोजगार मिलोगे !"

मैं तैयार होकर जब बैडरूम मे पहुंचा, तो खीज उठा। सीमा अभी तक बेसुध पड़ी सो रही थी।

"अरे !...सीमा, अभी तक सो रही हो ! !"

इससे पहले कि मेरे धैर्य का बांध टूटता, उस मृगनयनी ने नेत्र खोलकर मुझे निहारा। उसकी आकर्षक अगड़ाई भी मुझे बासी लगी।

"डार्लिंग....प्लीज तुम ही चाय बना लो न !....बिस्कुट तो रखे ही हैं। एक कप मुझे भी दे देना। बड़ी नींद आ रही है।"

क्रोधाग्नि मे जलता मैं, बिना कुछ खाए-पिये ही घर से निकल पड़ा। अगर यही हाल रहा तो सीमा से भी मेरे सम्बन्धो मे दरार पड़ जायेगी। उसका आलस्य, उसकी अकर्मण्यता, उसकी गरिमा को धूमिल करके उसे मेरी नजरो से गिरा देंगे। अगर ऐसा हुआ, तो क्या मैं सीमा को भी छोड़ दूंगा ? अब मेरे लिए ये एक नया प्रश्न था। रश्मि से भी तो यूं ही, जरा सी बात पर तनाव पैदा हो गया था ! शक की एक चिंगारी ने मेरा घरौंदा राख का ढेर बना डाला था। ठीक ही तो कहती थी रश्मि ! मैं दिन-

क। कैसे विश्वास किया जा सकता है, कि बिना समर्पण की भावना के वह दूसरे से निभा लेगा ? ..जब समर्पण ही करना है तो पहले ही साथी को क्यों न किया जावे ? जिससे दूसरे अथवा तीसरे साथी के समक्ष बलात् समर्पण करने को बाध्य होना पडे !

आत्ममथन से अब निष्कर्ष का माखन निकलने लगा है। एक घरौंदा जो एक आक्रोश की आंधी से धराशायी हो चुका है, उसके प्रायश्चित स्वरूप अब नये घर की अस्तित्व रक्षा मुझे ही करनी है।....और इस काम मे मैं अब अपने अहं को बाधा नही बनने दूंगा। अपने कर्मों के फलस्वरूप, टूटते बिखरते, अकेलेपन का सन्त्रास भोगकर मैं क्यो मूर्ख बनूं ?....अचानक मेरा ध्यान मेरे ठीक सामने खडी सीमा पर गया, जो बस स्टॉप पर मुझे अकेला खडा देखकर खिलखिला रही थी।

"हूँ....जैसा मैंने सोचा था....वही हुआ।"

"क्या मतलब ! !"

"गुस्से मे घर से निकले थे न !....जरूर कुछ न कुछ उल्टा सीधा सोच रहे होगे !....सामने से बस चली गई और तुम विचार सागर मे डूबते, उतराते उसे जाते देखते रहे।"

"क....क्या....क्या ! !...बस चली गई ?"

"जी हां मैंने दूर से स्पष्ट देखा है,...बस रुकी....यहा से कुछ सवारिया चढी और तुम....खडे ही रहे।....लो,....तुम्हारा लच बॉक्स।....अब तो थोड़ा सा मुस्करा दो ?"

और मैंने उस सुनसान बस-स्टाप पर कनखियो से इधर उधर देखकर सीमा को अपनी बाहो मे भर कर, उसके कपोलो पर प्यार आक दिया।

गहेली

ऋचा जब भी अपने बॉस के चैम्बर मे जाती है, उसका बास जमनादास, अपनी आखों पर चढा मोटे फ्रेम का चश्मा नाक पर सरका कर अपनी ललचाई नजरें उसके जिस्म पर गढा देता है। उसका बस चले, तो ऋचा के पुष्ट, आकर्षक, लावण्यमयी जिस्म को लील जाये वह! मुह मे दात, पेट मे आत हो न हो, किन्तु उसकी प्रौढ सी आखो मे वासना की पुतलिया, ऋचा को देखते ही अठखेलिया करने पर उतर आती हैं। –और ऋचा का मन न केवल कसैला हो जाता है, अपितु कडुवाहट से भर जाता है। . .लेकिन वह जानती है, कि फिलहाल इस अप्रिय स्थिति से बचने का कोई उपाय नही है। इसीलिये वह डिक्टेशन लेते समय कभी भी नजर उठाकर जमनादास की ओर नही देखती है। कई बार तो हद हो गई है! इस बुढऊ ने ऐसे अश्लील व घिनौने प्रस्ताव रखे हैं, कि ऋचा का जी तत्क्षण उसका मुह नोच खाने को हो आया था। अपनी सहेलियो मे हठी, जिद्दी, गहेली कहलाने वाली ऋचा आज परिस्थिति में ऐसे भवर मे फस गई है कि अपने बॉस की भद्दी से भद्दी मजाक को भी उसे अनदेखा, अनसुना कर देना पडता है।

"तो... तो तुमने क्या सोचा ?. देखो, मेरी बात मानोगी तो दिनदूनी रात चौगुनी तरक्की करोगी!"

एक दिन जमनादास ने जब ऋचा के समक्ष अपना यह बेतुका प्रश्न दोहराया तो वह तिलमिला उठी। कहा वह पचपन वर्षीय विधुर,... .और कहां वह नवयौवना! अपनी महत्वाकाक्षी, स्वप्निल आखो मे प्रश्न् कण लिये वह न जाने क्या सोच कर बॉस के चैम्बर से उठकर चली आई। बिना कोई उत्तर दिये। बिना डिक्टेशन लिये। और हतप्रभ से जमनादास, उसे रोकने का प्रयास विफल होने पर निश्चेष्ट से अपनी सीट पर बैठे रहे। किन्तु अब भी उनके चेहरे पर आत्मग्लानि या पश्चाताप की तपिश नही थी। उनके चेहरे पर अब आक्रोश का साम्राज्य था। "अतृप्त दर्प की कुण्ठा।

बस स्टॉप से घर पहुंचते-पहुंचते ऋचा ने अपने आलोड़ित होते मन को सहज करने में किंचित सफलता प्राप्त कर ली थी।""उसने आत्ममथन से निष्कर्ष का माखन निकाल लिया था।""अब वो इस कम्पनी में काम नहीं करेगी। उसके सोच में एक स्थिरता समा चुकी थी। अपने निर्णय को अमली जामा पहनाने की एक दृढ़ आश्वस्ति।""किन्तु घर पहुंचते ही उसका सम्पूर्ण जोश-खरोश तिरोहित हो गया। एक उच्छृंखल खरगोश की मानिन्द कुलाचें भरता उसका निर्णय जैसे उसके हाथों से छूट कर भाग गया और वह असहाय-सी अशक्त-सी उसे जाते हुये देखती रही। उसके निर्णय की चूलें चरमराने लगी थी जब उसे मालूम पड़ा कि आज उसके पिताजी को फिर एक पत्र मिला है, जो उनके जख्मों को उकेर गया है।""उनकी चिन्ता को द्विगुणित कर गया है। उनके श्वास के पंछी के स्वच्छन्द विचरण पर भी अंकुश लगा दिया है उस पत्र ने। लिखा था—"लालाजी आप तो जानते हैं, विजय की पढ़ाई-लिखाई से मेरा आर्थिक सत्त-निचुड़ गया है।""और अब, जब मेरा बेटा अपनी मंजिल के करीब है,""मैं नहीं चाहूंगा कि उसे किसी भी कारण से एक कदम भी पीछे हटना पड़े। आपको अपनी बेटी के भविष्य की चिन्ता न सही, लेकिन मुझे तो अपने बेटे को मंजिल तक पहुंचाना ही है!....मैं तो सोच रहा था, विजय को स्विट्जरलैण्ड की एक कम्पनी में, जिसकी ब्रांच दिल्ली में भी है, नौकरी मिल जाती, तो आप ही की बेटी राज करती!....इस नौकरी के लिये पहले उसे एक वर्ष की ट्रेनिंग के लिये अपने खर्चे पर स्विट्जरलैण्ड जाना होगा।....फिर इस बात के पूरे-पूरे चांसेज हैं कि उसे दिल्ली ब्रांच में ही रख लिया जायेगा। विदेशी फर्म की ऐसी अच्छी नौकरी से पूर्व ट्रेनिंग के लिये जाने में मुश्किल से तीस हजार रुपये का खर्चा आयेगा। मैंने विजय को पच्चीस वर्ष पढ़ाया है,....अब यदि आप शादी के समय तीस हजार रुपये का इन्तजाम भी नहीं कर सकते, तो मेरे विचार से आपकी बेटी मेरे बेटे के सान्निध्य का सुख भोगने के काबिल नहीं है।

इस पत्र को पढ़कर विक्षिप्त आर्थिक धरातल पर खड़े ऋचा के पिता पर वज्रपात हो गया था। रूप और शिक्षा के गहनों से सजी अपनी बिटिया के भविष्य की खुशियां भी, क्या अब उन्हें खरीदनी पड़ेंगी! विजय

के पिता का उसकी पढाई मे सत्त-निचुड गया तो क्या ऋचा की पढाई सँराती थी ! !....ये पहला अवसर नही है, जिसन ऋचा के पिता को मात दी है। किन्तु ऋचा अब मात खान का तैयार नही है !. ..नौकरी करना मजबूरी है !....शादी करना तो मजबूरी नही !! वहा वह असहाय थी.... यहा नही रहेगी। उसके अन्तर म सुपुप्त पडे उसके जिद्दीपन, उसके हठ ने अब अपना नागफन उठा लिया है। अब उसे कुछ न कुछ करना ही होगा।

रात को पिताजी व मा की नजरो से बचते-बचाते ऋचा ने वो पत्र ढूढ निकाला है, जिस पर वे दोनो ऋचा के ऑफिस से आने से पूर्व विचार-विमर्श कर रहे थे। पत्र को आद्योपान्त पढ़न पर उसका माथा ठनका। उसने सोचा—ये विजय, कही उसका सहपाठी तो नही !. . .जो कॉलिज मे स्मार्टियत की चादर लपेटे उसे और न जाने कितनी ही लडकियो को छेडा करता था। उसके कौतुहल ने उसे पिताजी की अलमारी खोलने पर मजबूर किया, तो उसे विजय का फोटो भी मिल गया—अरे हा !....ये तो वही है !!....ईडियट !....उसकी आंखो म क्षणिक चमक उभर आई है। कॉलिज मे तो नेता बना फिरता था ! वह मन ही मन बुदबुदाई। अनायास ही ऋचा को उस वाद-विवाद प्रतियोगिता का स्मरण हो आया है जिसमे दहेज के विरुद्ध अपना सशक्त पक्ष रखने पर विजय को सम्मानित किया गया था।.. कॉलिज ऑडिटोरियम तालियो की तेज आवाज से गु जायमान हो उठा था तत्क्षण।....और आज !. ..आज उसी के पिता.. .उसी के विवाह के लिये. ..! इससे आगे वह कुछ न सोच सकी। उसका मन घृणा स भर उठा था। विजय के उस प्रतियोगिता मे व्यक्त किये गये विचारो की ये परिणति देख कर उसे घोर निराशा हुई। विजय की उस मिथ्यापरस्ती पर उसका मन आहत हो गया था। प्रशसा जब घायल होती है तब आक्रोश का जन्म अवश्यभावी होता है। उस समय जिस विजय की, ऋचा के मन के किसी कोने मे प्रशसा हुई थी, आज उस विजय का ये रूप देखकर ऋचा पर आक्रोश का भूत सवार हो गया है —अब मैं शादी करू गी—तो इसी विजय से ! न जाने क्या सोच कर ऋचा ने अपनी जिन्दगी का इतना बडा निर्णय उसी पलाश में ले डाला। न केवल निर्णय, अपितु एक सकल्प किया था विजय को वर ने का, उस पल। न जाने किस भावना के वशीभूत होकर उसने ये निर्णय लिया है—ये शायद वह स्वय भी नही जानती। शायद ये

उसी किताब का असर है, जो सहेलियों ने उसे दे रखा है।....गहेली....गहेली।...अब वो वास्तव में गहेली होकर रहेगी।



"अरे !...तुम !!"

ऋचा को अपने चैम्बर म अपने समक्ष खड़ा देख कर चौंक पड़े हैं जमनादास। उनके लिये ये अप्रत्याशित लेकिन वांछित घटना है।

"तुम्हारा तो स्तीफा मेरे पास आ चुका है !"

"जी. .वही वापस लेने आई हू।"

"वापस !!. .यानी .तुमने नौकरी नहीं छोड़ी !!"

जमनादास का चेहरा खिल उठा है। अपने समक्ष ऋचा को नत-मस्तक हुये देख, अब उसका दर्प तृप्त हुआ है। आत्मतुष्टि से उसका मन चन्द लमहों मे न जाने कितने ख्वाब सजा लेता है ! अपने नयनों की ठण्डक, ऋचा को देख कर न जाने कितने मधुर स्वप्न सजो डालता है। उसके विचार से मछली उसके बिछाये जाल म फस चुकी है।. . बस, अब जाल खीचना शेष है।. .लेकिन ऋचा इस बात से आश्वस्त है कि मौका पाते ही वह दामन झाड़कर यहा से साफ, बेदाग, बच निकलेगी। उसे न केवल विजय के पिता द्वारा उसके पिता के लिये अपमानित करने वाले शब्दों का प्रयोग सालने लगा है अपितु अपने कॉलिज के दिनो मे विजय के मन मे अकुरित हुई दहेज विरोधी कोपल का निष्प्राण होना भी, हिन्दुस्तान की सहस्त्रों अविवाहिताओं के दुर्भाग्य की भयावह स्थिति के बने रहने का द्योतक प्रतीत होने लगा है। अन्ततोगत्वा उसने अपने दिल का गुबार निकालने के लिये विजय को पत्र लिखने का निर्णय लिया है।

उसने लिखा—"कालेज की वाद-विवाद प्रतियोगिता मे दहेज के विरुद्ध सशक्त पक्ष रखकर सम्मानित होने वाले युवक के पिता यदि उसी की

शादी में भारी भरकम दहेज मागे, तो उस युवक को क्या समझा जावे ?....
कायर !....और कायर पुरुष जिन्दगी मे कभी समृद्धिशाली नही हो सकता।"

ऋचा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसे अपने पत्र के प्रत्युत्तर मे विजय का पत्र मिला। किन्तु उसके विचार जानकर ऋचा के मन-आकाश पर छाये क्रोध व घृणा के बादल और अधिक गहन हो गये है। लिखा है—रूप की लौ तो एक निश्चित अवधि के उपरान्त बुझ जाती है।.. किन्तु पैसो से ससाधनो की वो 'मशाल' खरीदी जा सकती है, जिससे जीवन पर्यन्त असफलताओ के अन्धकार से दूर रहा जा सके। रूप-रश्मि से पेट की आग नही बुझ सकती।

ऋचा के समक्ष ज्यो-ज्यो विजय के विचारो का पिटारा खुलता जा रहा है, त्यो-त्यो उसका सकल्प दृढ होता जा रहा है।

एक दिन अप्रत्याशित रूप से ऋचा और विजय की मुलाकात हो जाती है। कॉफी हाउस मे बैठकर ऋचा उसे जीवन-साथी का महत्व समझाने का प्रयास करती है, किन्तु विजय को तो वही 'मशाल' चाहिये। जीवन-साथी उसके लिये गौण है। वार्तालाप के उस दौर मे ऋचा को आभास होता है कि विजय उसे स्वीकार करने को तो तैयार है, लेकिन केवल उस स्थिति मे, जब उसके हाथो मे वाछित 'मशाल' हो।

"ठीक है विजय....मुझे तुम्हारा प्रस्ताव मजूर है।....लेकिन, मेरी भी एक शर्त है!"

"हा हा कहो न!"....विजय का मुख-मण्डल आशा की किरण से देदीप्यमान् हो चला।

"ये राज केवल मेरे और तुम्हारे बीच ही रहना चाहिये कि मैंने सुहागरात मे फूलो की सेज पर बैठ कर तुम्हारी प्रिय 'मशाल' तुम्हे देने का वचन दिया है।....तुम अपने पिताजी की सन्तुष्टि के लिये, चाहो तो उन्हे बता सकते हो, लेकिन मेरे घर वालो को ये बात मालूम नही होनी चाहिये।"

"मुझे मजूर है।....लेकिन....ये इतना पैसा तुम कहा से लाओगी?"

"तुम्हे आम खाने से मतलब है न!..हा,....मेरी एक शर्त ये भी रहेगी कि तुम इस बारे मे मुझ से कुछ नही पूछोगे।"

"अच्छा बाबा....नही पूछूंगा।"

विजय ने पुलकित मन से, रोमांचित होकर ऋचा का हाथ थामा, तो उसे अनुभूति हुई मानो पैसे देकर वह किसी मालिश वाले से सिर की मालिश करवाकर आल्हादित हो रही हो। खरीदा हुआ चैन। खरीदे हुये प्यार की मानिन्द। पुरुष वैश्या की मानिन्द।

ऋचा ने विवाह के लिये तीन माह का समय मांगा था। ठीक तीन महीने बाद दोनो वैवाहिक बन्धन मे बंध गये। एक ऐसे बन्धन मे जिसकी नींव चांदी के चन्द टुकडो पर रखी गई थी।....जिसका आधार लक्ष्मी थी। .वह लक्ष्मी, जिसे 'चंचला' कहा गया है। ऋचा ने अपने वचन के अनुसार सुहाग की सेज पर बैठ कर अपने पति को तीस हजार रुपया की 'भी' भेंट चढ़ा दी। उसे इस समय प्रसन्नता है तो केवल इस बात की, कि उसके पिताजी अब निश्चिन्त हो जायेंगे। उसने अपने पिता को, अपने जिस्म की बची खुची हड्डियो पर बलात्कार करने से बचा लिया है, पूर्व निर्धारित योजनानुसार शादी के पन्द्रह दिन बाद ही विजय स्विट्जरलैण्ड के लिये रवाना हो गया है। ..अपनी नव-विवाहिता से एक वर्ष बाद लौट आने का वादा करके।



स्विट्जरलैण्ड का एक छोटा सा खूबसूरत शहर लूसर्न।. .जहा की एक कम्पनी मे विजय को एक वर्ष की ट्रेनिंग के लिये भेजा गया है। ये आकर्षक शहर सैलानियो के लिये एक विशेष आकर्षण का केन्द्र है। इस शहर के बीच मे से होकर जो नदी बहती है उसे रूएस नदी कहते हैं। आगे चलकर यही रुएस नदी एक सुन्दर, मनभावन झील मे परिवर्तित हो जाती है जिसे लूसर्न झील के नाम से पुकारा जाता है। इस झील मे नौका विहार होता है। यहा से नौकायें यात्रियो को पिलायम व टिटलिस आदि स्थानो तक ले जाती हैं जो सुन्दर, दर्शनीय स्थल हैं।

अपने घर, परिवार और देश से सहस्त्रो मील दूर लूसर्न झील मे नौका विहार के उन्मादक क्षणो मे विजय को ऋचा की कमी सालने लगती है। मन के किसी कोने से आवाज आती है—बिन साथी सब सून। उसे अहसास होने लगता है कि जिस प्रकार गम बाटने से हल्के होते है उसी प्रकार खुशी भी साथी के साथ मिलकर ही द्विगुणित होती है। यहा का वातावरण और अपने वतन से दूरी विजय के मन मे जीवन साथी के प्रति आत्मीयता उसकी अहमियत का बीजारोपण कर गई है।

एक शाम विजय, लूसर्न म अपनी कम्पनी के मालिक के घर उनसे मिलने पहुचता है, तो व अपने बगले की बार मे मिलत है। मिस्टर डब्ल्यू डब्ल्यू किनकड अपनी कम्पनी की हिन्दुस्त नी ब्राच का मुआयना करके आज ही लूसन पहुचे है। प्रतिपल गहराती शाम और बढते हुये सुरूर के साथ ही मिस्टर किनकेड विजय को अपनी दिल्ली यात्रा के सस्मरण सुनाने लगते हैं।

"ओ sss इण्डियन ब्यूटी इज फैन्टास्टिक!"

अपने बास के मुह से बार बार भारतीय नारी की इस रूप म प्रशसा से उसे अश्लीलता की बू आने लगती है। उसे आभास होने लगता है जैसे उसका बास कोई जगली जानवर हो जिसके मुह इण्डियन ब्यूटी का लहू लग गया हो और वह बार बार उस स्वाद को याद करके लार टपका रहा हो। उसका जी चाहता है, बॉस की कनपटी पर एक घूसा जड दे, लकिन वह कुछ नही कर पाता। उसका मन घृणा से भर जाता है। और वह इन अप्रिय बातो का रुख दूसरी ओर मोडने मे सफल हो जाता है। कम्पनी के बारे में बात चलने पर मिस्टर किनकेड उसे बताते है कि अगले महीने यहा हम एक सेमीनार आगनाइज कर रहे है जिसमे सभी देशा की ब्राचो के हैडस आ रहे है—भारत से भी! सुनकर न जाने क्या विजय को एक सुखद अनुभूति होती है। वह स्वय नही समझ पा रहा है कि जिन बाता पर भारत मे उसका कभी ध्यान नही गया। यहा आकर उसे उन बाता म भी क्यो रुचि पैदा हो गई है! यहा अपने देश की किसी भी मामले म बुराई उसके लिये असह्य हो जाती है और बढाई पर वह पुलक उठता है। जबकि उसने

अपने आपको ऐसा भारत मे कभी नही पाया है। किसी वस्तु, स्थान अथवा व्यक्ति का महत्व तब ही मालूम पड़ता है, जब वह बहुत दूर हो जाता है।

पूर्व निर्धारित कार्यक्रमानुसार सेमीनार आरम्भ होने से एक दिन पूर्व जब विजय अपने बॉस के साथ एरोड्रोम पर पहुंचा, तो इण्डियन एयर लाइन्स के एक विमान को देख कर उसे लगा, मानो ये उसका निजी विमान हो। और उसका सीना गर्व से तन गया।

विमान से उतरते जिस प्रौढ़ व्यक्ति की ओर मिस्टर किनकेड ने इशारा किया, विजय उनके हाथ से सूटकेस लेने को लपका। उसके साथ ही, एक खूबसूरत लड़की भी थी। उस प्रौढ़ से व्यक्ति से सूटकेस लेने के बाद जब उसका ध्यान पीछे आ रही लड़की पर गया तो वह हतप्रभ हो गया। उसे काटो, तो खून नही। बड़ी शोखी से उस ओर से आने वाली वह खूबसूरत लड़की ऋचा थी। उस समय वक्त की नजाकत को देखते हुये, अपने बॉस की उपस्थिति मे अपने अन्तर के तूफान को अभिव्यक्ति प्रदान करने का साहस वह न जुटा सका। एरोड्रम पर ही एक पल के लिये जब विजय को एकान्त मिला, तो उसने क्रोध मिश्रित आश्चर्य से ऋचा से प्रश्न किया—

"ऋचा!....ये सब क्या है!!... तुम यहां?"

"शट अप!....एण्ड बिहेव योर सैल्फ!"

विजय इस अप्रत्याशित 'लताड़' से अचकचा गया।

तीन दिन तक लूसर्न मे ऋचा की उपस्थिति विजय को पल-पल जलाती व कुण्ठित करती रही। कई बार, जब बात करने का अवसर पाकर विजय ऋचा से कुछ पूछना चाहता, तो ऋचा उसे किसी न किसी तरह फटकार देती। और विजय के जख्मो पर जैसे नमक का छिड़काव हो जाता। वह समझ नही पा रहा था, क्या करे, क्या न करे!....और तीसरे दिन विजय को पशोपेश मे छोड़ कर ऋचा अपने बॉस के साथ उसी शान-शौकत से स्वदेश लौट गई। विजय के अन्तर मे कौंधते कई प्रश्नो को छोड़ कर। उसके बाद विजय उसे कई पत्र लिखता है... लेकिन उसे अपने पत्रो का कोई उत्तर नही मिलता।....उसकी कुण्ठा बढ़ती जाती है।



अपनी एक वर्ष की ट्रेनिंग समाप्त करके जब विजय पालम एयर-पोर्ट पर उतरा तो अपने माता-पिता के साथ ऋचा को भी देखकर उसके मन के ज्वालामुखी का दहकता लावा फूटने को आतुर हो उठा है। किन्तु वहां भी माता-पिता एवं मित्रों की उपस्थिति में वह ऋचा पर प्रश्नों की बौछार करने में स्वयं को विफल पाता है। लाजवन्ती बनी ऋचा ने जब विधिवत् उसके चरण स्पर्श किये तो वह तिलमिला उठा है।

इन्तजार की असह्य घड़ियां आखिर कट ही गईं।....और रात को जब ऋचा विजय के बेडरूम में प्रवेश करती है, तो विजय उस पर बरस पड़ता है।

"तुम जैसी गिरी हुई औरत को मेरे बेडरूम में आने का अधिकार किसने दिया?"

"जिसने मुझे गिरी हुई औरत बनाया।..तुमने।"

ऋचा के इस बेबाक दोषारोपण पर विजय का आक्रोश और भड़क उठता है।...लेकिन ऋचा चुप नहीं होती।

"विजय....जीवन के सफर में मंजिल तक पहुंचने की कामना हर इन्सान संजोता है।....लेकिन मंजिल एक होने पर भी इस तक पहुंचने के कई रास्ते होते हैं, मनसा-वाचा-कर्मणा से लेकर साम-दाम-दण्ड-भेद तक।....और जिस रास्ते पर तुम चल पड़े थे, वह निश्चित रूप से समाज के लिये एक जहरीला पथ था।...तुम्हारे इस जहर को मारने के लिये मैंने भी जहर से काम लिया।...एक बात बताओ!"चन्द लमहे रुककर वह वह फिर बोलने लगी।"—अपनी मंजिल तक पहुंचने के लिये जब पुरुष अपनी योग्यता व पौरुष को कैश कर सकता है, तो क्या नारी, आज की नारी के पास कैश करने को कुछ नहीं है!....क्या उसे अपना रूप लावण्य कैश करने का अधिकार भी नहीं है? पुरुष की योग्यता व नारी का रूप, दोनों ही अन-मोल गहने होते हैं....जब एक को बेचा जा सकता है, तो दूसरे को क्यों नहीं!!...और फिर तुम स्वीकार कर चुके हो कि तुम्हारे लिये जीवन साथी की मान मर्यादा, रूप लावण्य से अधिक महत्वपूर्ण वो मशाल है, जिससे, तुम्हारे विचार में आर्थिक विक्षिप्तता के तमाम अन्धकार दूर किये जा सकते

हैं ।....तुमने जिस मशाल से अपनी मंजिल को खरीदा है,....वह मशालें तुम्हें किसने दी ?....मैंने !....मैंने वो मशाल तुम्हारी कीमत स्वरूप देकर तुम्हे खरीदा है !....जिस प्रकार अब मंजिल तुम्हारी है....उसी प्रकार अब तुम मेरे हो ।....अब किस मुंह से तुम, मुझसे अपनी पत्नी होने का अधिकार छीन सकते हो ?"

ऋचा अपने तन-मन के मैल को शायद शब्दो के रूप में ढाल कर निकाल फेंकने का प्रयास करती है। विजय पाषाण प्रतिमा बना, सब कुछ सुन रहा है।....वह निरुत्तर है। उसका कण्ठ अवरुद्ध है।....लेकिन वह महसूस कर रहा है कि उसके मन-मस्तिष्क मे इतने दिनों से छाया कुण्ठा का कुहासा अब छटने लगा है। अगले ही पल उसने अपने बोझिल चेहरे को आकर्षक, रूमानी मुस्कुराहट से सजा कर ऋचा को अपनी बाहों में भर लिया।....ऋचा भी विजय के वक्षस्थल पर सिर रखकर भीग-भीग गई है।



बड़ी अम्मा

कॉलबैल बजने पर मैंने दरवाजा खोला, तो पोस्टमैन को सामने खड़ा पाया। उत्सुकतावश उसके हाथ से तार लगभग झपटकर खोल डाला, तो हतप्रभ रह गया था। लिखा था "बड़ी अम्मा एक्सपायर्ड।"

पलक झपकते ही आंखें साश्रु हो उठी और मेरे स्मृतिपटल पर बड़ी अम्मा का चेहरा दृश्यमान हो उठा। गोरा चिट्टा लेकिन झुर्रियों पड़ा.... ममतामयी हंसमुख चेहरा। आत्मीयता ओढ़े शालीन चेहरा। मैंने उन्हें सदैव इसी रूप में देखा है। पूजा-पाठ मे उन्हें विशेष रुचि थी। वो दिन में कई-कई बार पूजा किया करती थीं। खानदान में हुई लगभग सभी शादियो मे मैंने उन्हें तन-मन-धन से कार्य करते देखा है। दोनो ताइजी, मम्मी या दोनो चाचियों के यहां जब भी कोई विवाह होता, तो पारस और उससे सम्बन्धित सभी कार्यों का भार बड़ी अम्मा पर डाल कर सभी औरतें निश्चिंत हो जाया करती थी। कई बार तो किसी के यहां जापा आदि भी होता, तो वहां भी बड़ी अम्मा के प्रशासन के बिना काम न चल पाता। मुझे वो समय बार-बार याद आता है जब मैं बहुत छोटा था। मम्मी सर्विस करती थी। सवेरे नौ बजे वो तो चली जातीं, फिर शाम को पांच बजे वापस आती। मैं सारा दिन बड़ी अम्मा के सान्निध्य मे बिताता था। बड़ी अम्मा मुझे अपने कन्धे पर बैठाकर घुमाती। मुझे अच्छी-अच्छी कहानियां, गीत सुनाती। उन्होने मुझे मां के प्यार से कभी वंचित नही होने दिया। शायद उन्हें तब एक-आध वर्ष के लिये हमारे यहां बुलाया गया था....मेरी देखभाल करने के लिये।

उनके व्यवहार से सभी यही समझते थे कि बड़ी अम्मा हमारे खानदान की सबसे बड़ी बहू हैं। बहुत कम लोग जानते थे कि बड़ी अम्मा वाले स्वर्गवासी ताऊजी हमारे पिताजी के दूर के रिश्ते के चचेरे भाई थे। मैंने होश सम्भालते ही बड़ी अम्मा को विधवा के रूप में ही देखा है। बड़ी अम्मा के व्यवहार से द्रवीभूत होकर ही, शायद हमारे बाबा साहब ने अलीगढ़ वाली

हवेली बडी अम्मा के नाम कर दी थी। जिससे बुढापे मे उन्हें आर्थिक कठिनाइयो का सामना न करना पडे।

"क्या है प्रशान्त ?"

अचानक पिताजी की आवाज ने मेरी विचार शृंखला को तहस-नहस कर दिया। पोस्टमैन को गये काफी देर हो चुकी थी। मैंने चुपचाप वो तार पिताजी की ओर बढा दिया और उनके चेहरे पर उभरते ज्वार-भाटे को देखने लगा।

"अजी सुनती हो !"

पिताजी के चेहरे की भाव-भगिमा से स्पष्ट था कि उन्हे भी गहरा आघात पहुँचा है। उनके सम्बोधन पर ज्यू ही मम्मी दनदनाते हुये उस कमरे मे प्रविष्ट हुई तो पिताजी ने उन्हे भी सूचना दे दी।

"अलीगढ से तार आया है, .बडी अम्मा नही रही।"

"लो ..आखिर हमारे समझदारी से काम लेने का फायदा ही हुआ न !...अब हमारे शैलेन्द्र का ही हवेली पर कब्जा हो गया।"

यद्यपि मैं और पिताजी, दोनो ही मम्मी की आदत से भली भांति परिचित थे, फिर भी उनकी इस निम्न स्तर की बात से हम दोनो आश्चर्यचकित थे।

"कमाल करती हो तुम भी !..इतने दुःख की खबर आई है, और तुमको हवेली के कब्जे की पडी है ?"

"अरे, तो इसमे इतने आश्चर्य की क्या बात है !.. तुम्हारी भाभी क्या अमृत खाकर आई थी ? मैं हल्ला न मचाती, तो क्या तुम शैलेन्द्र को अलीगढ मे फैक्ट्री डालने देते ?. शैलेन्द्र बेचारा कितनी देखभाल करता था तुम्हारी भाभी की ! .अब मरना तो उन्हे था ही ? और फिर, विधवा तो स्वय भी ईश्वर से मौत ही मागती है !"

हमेशा की भांति उस दिन भी पिताजी मम्मी के समक्ष,कुछ न बोल

सके और मम्मी न जाने कब तक बडी अम्मा के लिये जले कटे शब्द उस वातावरण मे उडेलती रही।

उस दिन शाम को खाने की मेज पर मौका देखकर मैंने ही बात छेड दी थी।

'पिताजी ! .बडी अम्मा की तेरहवी कब है ?"

"छब्बीस तारीख को।"

"तो, हम सब को चलना कब है ? '

"मेरे विचार से पन्द्रह को ही चलना चाहिये, क्योकि वहा सारा इन्तजाम आदि करना होगा न !"

पिताजी का इतना कहना था, कि मम्मी फिर शुरू हो गई।

"लगता है बडी अम्मा के मरने का दु ख सबसे ज्यादा तुम्हारे पिताजी को ही हो रहा है .और सारे भाई लोग तो मुश्किल से एक-दो दिन पहले पहुँचेंगे !"

पिताजी चुप थे। वे ऐसे समय मे प्रतिवाद नही करते हैं। यही कारण था कि घर मे कभी गृह-क्लेश को स्थान नही मिल पाया था। किन्तु मम्मी बोलती ही जा रही थी।

"बडी अम्मा का ध्यान रखने के मामले मे तुम्हारे पिताजी ठीक तुम्हारे दादा जी पर गये हैं। उन्होने अपने पाच पाच बेटे होते सोते लाखो की हवेली अपने रिश्ते के भाई की विधवा पुत्रवधू के नाम कर दी, और अब तुम्हारे पिताजी उनका अन्तिम सस्कार करने मे कोई कसर नही छोडना चाहते हैं।"

व्यग्य बाण छोडती मम्मी की आवाज म अचानक दृढता का समावेश हुआ।

"कान खोलकर सुन लो जी, हमारे पास कोई गडा हुआ खजाना नहीं है, जो हम सबके अन्तिम सस्कारा पर फूकते फिरें ! ..और सब भाइयों को भी तो आगे आने दो !. .देखें तो सही, कौन-कौन क्या कर सकता है।"

मैं जानता था, इस समय लगभग यही राग अन्य चारो भाइयो के घरो मे भी आलापा जा रहा होगा। क्योकि कई बार शादियो मे जब भी सब लोग मिलते, तो हवेली के बारे मे विचार-विमर्श करने के लिये बडी अम्मा से छिपकर दो तीन बैठको का आयोजन अवश्य किया जाता था। कैसी विडम्बना है! पाच-पाच सुहागनें मिलकर सदैव एक विधवा के विरुद्ध व्यूह रचना करते नही थकनी थी। जब कि बडी अम्मा ने सदैव सबसे मिल जुल कर चलने का प्रयास किया है। लेकिन मेरी नजर म इस जलन का मुख्य कारण बाबा साहब द्वारा हवेली बडी अम्मा के नाम करना ही था। हवेली पर हमारा भी अधिकार रहे, इसीलिये मम्मी ने शैलेन्द्र भैया की सहारनपुर मे लगी अच्छी खासी बैंक की नौकरी छुडवाकर उन्हे प्लास्टिक का सामान बनाने की फैक्ट्री अलीगढ मे डलवा दी थी। क्योकि स्वय को तो अपनी कानपुर की "पौश" कॉलोनी मे बनी कोठी म रहना था, अन्यथा किरायेदार ही उसे हथिया लेते। इसीलिये तो पिताजी के देहरादून से रिटायर होते ही मम्मी पिताजी ने कानपुर वाली अपनी कोठी सम्हाल कर शैलेन्द्र भैया को अलीगढ भेज दिया था। बल्कि मेरे विचार म तो इसम पाचो देवरानियो-जिठानियो की चाल थी। उन्हें डर था कि बडी अम्मा के बाद उनका इकलौता पुत्र मनीष, जो मेरठ मे जूनियर इजीनियर था, कही हवेली पर अपना आधिपत्य न जमा ले। सब का विचार था कि बडी अम्मा के बाद हवेली को बेचा जाये तो लाख लाख रुपया पाँचो भाइयो के हिस्से मे आराम से आ ही जायेगा।

बडी अम्मा की तेरहवी वाले दिन पाचो भाई सपत्नीक अलीगढ मे उपस्थित थे। उस समय वहा का वातावरण शोकसतप्त न होकर विवादपूर्ण था। और विवाद का एक मात्र मुद्दा था हवेली! उस समय वहा इस बात से किसी को सरोकार न था कि बडी अम्मा के अन्तिम सस्कार की रस्म विधिवत् अदा की जा रही है अथवा नही। सब लोगो का ध्यान हवेली के बारे म फैसला करने पर था। जिस औरत की उपस्थिति मात्र से खानदान म होने वाला कोई भी सस्कार विधिवत् सम्पन्न हो जाया करता था, आज उसके अन्तिम सस्कार को श्रद्धापूर्वक सम्पूर्ण करवाने मे किसी का ध्यान न था!

इस के बाद बडी अम्मा के पुत्र मनीष के इशारे पर जब एक वकील ने बडी अम्मा द्वारा लिखित किसी वसीयत के अस्तित्व की जानकारी दी तो

सभी की आखें जैसे फटी की फटी रह गयीं। सब लोग एक दूसरे के आश्चर्य-चकित चेहरे को देखने लगे।

"लो! ...बुढ़िया बाकायदा हवेली मनीष के नाम कर गई है!.. अब तुम लोग कुछ नही कर सकते हो!"

मम्मी ने बुरा सा मुह बनाते हुये पिताजी के कान म फुसफुसाया तो पिताजी उस क्षण भी शान्त व स्थिर रहे। वातावरण मे एक अदृश्य आक्रोश की लहर व्याप्त हो उठी थी।

"तुम्हारी भाभी की दयनीय स्थिति को देखते हुये तुम्हारे पिताजी ने हवेली उन्हें रहने के लिये दे दी थी, इसका मतलब ये तो नही कि पीढी दर-पीढी अब हवेली पर उन्ही का अधिकार हो गया!"

पाचो देवरानियो जिठानियो मे कानाफूसी होने लगी थी। पाचो बहुओ की आखें अपने-अपने पतियो से जैसे एक ही बात कह रही थी। लेकिन प्रत्यक्ष रूप से उस समय कोई प्रतिक्रिया देखने मे नही आई थी।

आनन-फानन मे सब लोगो के वापसी के कार्यक्रम बनने लगे। खाने के बाद जब पाचो भाई और उनकी पत्निया कमरे मे अपने अपने चलने की तैयारी के साथ वार्तालाप मे मशगूल थे, तो मनीष को वहाँ आया देखकर सभी ने रूखा सा मुह बना लिया था।

'चाचाजी .ये अम्मा ने वसीहत लिखी थी, मुझे भी इसकी जानकारी आज ही हुई है! .मैं चाहता हूँ कि आप लोग इसे देख लें!....आप लोगो को इसमे कोई एतराज तो नही है?"

मनीष ने एक लिफाफा ताऊजी की ओर बढते हुये अवरुद्ध कण्ठ से, अस्फुट शब्दो मे कहा।

"नही नही बेटे!..हमे क्या एतराज हो सकता है!..तुम्हारी अम्मा ने जो कुछ भी किया है, सोच समझकर ही किया होगा!"

बडे ही स्नेहिल शब्दो के साथ ताऊजी ने वो लिफाफा पढे बिना ही पुन मनीष के हाथो मे देने का प्रयास किया, लेकिन मनीष ने उसे लिया नही।

"मैं चाहता हूँ आप लोग इसे एक बार पढ तो लें !"

मनीष के आग्रह पर ताऊजी ने वो लिफाफा खोलकर पढना आरम्भ किया तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसमे लिखा था.... "ये हवेली मेरे पास लाला ज्ञान स्वरूप जी के पाचो लडको की अमानत है ।....मेरे बाद ये हवेली उनके पाचो लड़को को ही वापस दे दी जाये !"

वसीहतनामा पूरा पढते ही ताऊजी की आखों मे हल्की सी एक अश्रु किरण फूटी और उन्होने बडे गर्व से उसे ताइजी की ओर बढ़ा दिया। बड़ी अम्मा के इस अप्रत्याशित निर्णय पर सभी चकित थे। जीवन मे शायद पहली बार बडी अम्मा की सभी देवरानिया उन्हे मन ही मन श्रद्धा सुमन अर्पित कर रही थी। सारी उम्र, सबकी आखो मे खटकने वाली जिठानी आज मरणोपरान्त सभी की नजरो मे महान् हो गई थी। सभी को अपने व्यवहार पर, जो उन्होने बडी अम्मा के साथ किया था,... आत्मग्लानि थी।





सुरुर

"अजी सुनती हो !"

"क्या है जी, क्यों इतनी जोर से बांग लगा रहे हो ?"

'अजी मेरा लंच बॉक्स तैयार हो गया ?. दफ्तर को देर हो रही है।"

"ठहरो, पहले राजू और नीलिमा का खाना लगा दूं, उन्हें देर हो गई तो टीचर क्लास मे नही घुसने देगी।"

"हां हां मुझे तो कोई कुछ कहने वाला है ही नही न !. चाहे जितनी देर से दफ्तर पहुचू !"

'तुम्हारा क्या है तुम तो बॉस की लताड सुनने के आदी हो चुके हो.. कम से कम बच्चो को तो ऐसी बुरी लत न पड़े !"

खीज कर रह गये थे बेचारे कैलाश नाथ जी। बच्चों ने भी कनखियों से पापा को देखकर हथेली अपने मुह पर रखकर बडी कठिनाई से रोका था अपने हसी के फव्वारे को।

तेरह वर्ष पूर्व अपनी शादी मे मिले अपने उचक्टे सूट को पहनकर तैयार खड़े कैलाशनाथ जी ने आलमारी से गन्दा कपडा निकाल कर अपनी 'वृद्ध' साइकिल पर गुस्सा उतारना आरम्भ कर दिया था। और उनका मन जा उलझा मानसिक मथन मे। .इस घर मे यदि किसी का तिरस्कार होता है, तो वो मैं हूँ। बच्चो से लदी-फदी गृहस्थी की इस बोझिल गाडी को चरमरा चरमरा कर खीचने वाला मैं एकमात्र बैल हूँ। लेकिन इस ढुलाई के प्रत्युत्तर मे मुझे क्या मिलता है ? बेरूखी ? फब्तियां ?· बहिष्कार ? प्रताडना ? अनादर ?

"ये लो जी, तुम्हारा खाने का डिब्बा।"

ग्रभी मानसिक मथन से निष्कर्ष का माखन भी न निकल पाया था, कि उनकी विचार शृंखला को उनकी धर्मपत्नी ने खडित कर दिया। बेचारे कैलाश नाथ जी, अपनी मशीनी जिन्दगी मे फिर से धकेल दिये गये थे।

"... और सुनो।"

"अब क्या है भाग्यवान ?"

सरला द्वारा आवाज मे बलात् घोले गये माधुर्य ने उनके बढते कदमो को वही जड कर दिया था।

"आज दफ्तर से सीधे घर ही आना।"

"क्यो ?....कोई खास बात है क्या ?"

"और नही तो क्या''' आज पहली तारीख है न।....बाजार नही चलोगे क्या ?"

"उफ मैं तो भूल ही गया था... ठीक है।... शाम को जल्दी घर आ जाऊँगा....तुम तैयार रहना।"

"हाँ हाँ, मैं तो तैयार रहूँगी,....लेकिन तुम कही पिछली बार की तरह से....।"

"ओफ्फो अब क्या स्टाम्प पेपर पर लिखकर दूँ ?"

पत्नी को दिये गये अपने वायदे की पुष्टि कर, लन्च बॉक्स साइकिल के कैरियर मे लगाकर फौरन भाग लिये थे कैलाश नाथ जी।



"एक पैग और बना दो।"

"साहब....आप अपनी हालत तो देखिये।....क्या एक पैग और लेकर आप घर जा सकेगे ?"

"बको मत !... तुमसे जो कहा है, करो !"

उस बार के बैरे को तो दुतकार दिया था कैलाश नाथ जी ने.... लेकिन वे स्वय अपनी हालत से अनभिज्ञ न थे। अपनी चेतना को तिलान्जलि देने पर आमादा थे वे। अपने कुण्ठित जीवन की छाया तक मदिरा में घोलकर पी जाने को आतुर। धर्मपत्नी की आखो मे अनुनय-विनय के डोरे देखकर सुबह उसे जो वचन दे आये थे, उसे तो अब से तीन घन्टे पूर्व ही, पहले पैग के साथ गले मे उलीच गये थे,.... और तब ही से इस बार मे जमे हुये थे कैलाश नाथ जी। प्रत्येक माह की पहली तारीख की भांति आज भी वे अपने वेतन की गड्डी अटी मे दबाये, दफ्तर से सीधे यही आ टपके थे वे। पल-पल बढते सरूर के साथ-साथ उन्हे जिन्दगी से विरक्ति होती जाती थी।....शादी क्या हुई, मौज मस्ती के गुलशन मे कुलाचे भरती चचल हिरणी सी जिन्दगी, एक बोझिल खटारा गाडी बन कर रह गई थी।....पग-पग पर मौत को निमन्त्रण देती जिन्दगी भला किस काम की !' बिलकुल टूट गये थे कैलाश नाथ जी।....ऐसे मे इन कुण्ठाओ से क्षणिक छुटकारा पाने का भी कोई माध्यम मिले,....तो टूट पडता है इन्सान उस पर !....और यही हुआ था कैलाश नाथ जी साथ।

"अरे ! कैलाश नाथ जी....आप यहाँ बैठे है, और घर पर भाभी जी आपके लिये परेशान हो रही है।"

"त....त तुम यहाँ क्यो आये हो....क ब...बाब मे हड्डी बनने ?"

सुरा के सुरूर मे धुत कैलाश नाथ जी ने बडी कठिनाई से पहचाना था आगन्तुक को। ये उनका पडोसी मित्र था।

"मैं आपको लेने आया हूँ....क्या हालत बना ली है आपने अपनी ! बच्चे आपको इस इस रूप मे देखेंगे तो क्या सोचेगें ?....भाभी जी पर क्या गुजरेगी ?....तुषारापात नही हो जायेगा उनपर !"

"कैसी सुरूर की दुनिया मे सानन्द था मैं,....तुमने आकर मेरा सारा नशा हिरण कर दिया।....चले जाओ यहाँ से !"

बौखलाहट उनके चेहरे से चू रही थी।

"इस क्षणिक सुख प्रदान करने वाली को सीने से लगाकर, उसका बहिष्कार करना कहाँ तक न्याय संगत है....जो अपने दामन में असीम प्यार लिये आजीवन आपकी राहों में फूल बिछाने को कृत-संकल्प है ?....सुरा के मोह में आप उस सुन्दरी से किनारा कर रहे हैं, जो जीती है तो आपके लिये !....मरती है, तो आपके लिये !"

"ऊँह....उसे पति नहीं....एक कमाऊ मशीन चाहिए....जिससे वो और उसके बच्चे ऐश कर सकें।"

"छि .. .छि . ..ऐसी बातें करते हुए आपको शर्म आनी चाहिए।"

"जिन बच्चों को आप इस दुनिया में लेकर आये हैं, ...क्या उनके प्रति आपका कोई कर्त्तव्य नहीं है ?....क्या आपके माता पिता ने आपको नहीं पाला पौसा ?....यदि वो आपका अधिकार था, तो अपने बच्चों की परवरिश आपका कर्त्तव्य है।....अपने कर्त्तव्य से मुख मोड़ने वाला कायर कहलाता है!"

"अच्छा-अच्छा....मुझे भाषण सुनना पसन्द नहीं है। घर पर बीबी ऑफिस में बॉस की तरह अब यहाँ भी तुम मुझे चैन नहीं लेने दोगे !.. .चले जाओ यहाँ से !. ..इससे पहले कि इस बार में कोई अप्रिय घटना घटे,. . तुम यहाँ से चले जाओ।"

"ठीक है कैलाश नाथ जी,... .मैं यहाँ से जा रहा हूँ। लेकिन आप भी याद रखिये ...आपकी पत्नी को मैंने भाभी कहा है। अब उनपर छाये यातना के बादलों को मैं अपने कर्त्तव्य के झौंकों से तितर बितर करके ही दम लूँगा।"

कैलाश नाथ जी के मुख पर तमाचा सा मार कर उनका वह मित्र उस बार से बाहर निकल गया।



रात के दस बजे, सुरूर की घोड़ी पर सवार कैलाश नाथ जी ने अपने घर का दरवाजा खटखटाया।....यूं तो काल्पनिक स्वर्ग में विचरण कर रहे वे शायद और देर से घर पहुचते। किन्तु भला हो गली के कुत्तों का, जिन्होने कैलाश नाथ जी के डगमगाते कदमों मे स्फूर्ति सृजित कर दी थी, जिससे थोड़े ही समय मे वे लम्बा रास्ता तय कर गये थे।

"अरे!....सब के सब सो गये क्या?....अभी तो श्याम भी नही हुई!

बड़ी देर तक वे अपनी दस्तक का प्रत्युत्तर न पाकर खिसिया गये थे, वे। खिसियाहट मे उनका शिथिल सा हाथ फिर एक बार किवाड़ से जा भिड़ा ...और उसी पल दरवाजा खुल गया।

"कहिये?.... किससे मिलना है आपको?""न जाने कम्बख्त इतनी रात गये कहाँ.. .कहाँ से चले आते हैं।"

"राजू के बच्चे....तेरी ये हिम्मत!"

मदिरा मिले वृद्ध खून मे उफान आ गया था उस पल। अपने बेटे के तेवर देखकर उनके आक्रोश मिश्रित आश्चर्य का ठिकाना न रहा। दरवाजे की चौखट पर पैर रखकर एक हाथ उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से राजू के गाल की ओर घुमाया....किन्तु वह उसके कपोलों को छू तक न सका।

"अरे!....पापा आप?.. उफ... मम्मी ने न जाने कड़वी-कड़वी क्या दवा सी पिला दी... जो.. जो मैं आपको पहचान भी न सका।"

अर्द्धचेतनावस्था मे भी कैलाश नाथ जी को, राजू को झूमते हुये देख कर समझने मे एक पल भी न लगा कि ये भी शराब पिये हुए है'''ये नजारा देखकर उनका नशा कुलाचे भरते खरगोश के समान भाग निकला था।

"तो....तो तूने आज शराब पी है? सरला.. सरला!"

आक्रोशवश, भुनभुनाते हुये कैलाश नाथ जी ने अपनी धर्मपत्नी को आवाज लगाई। इससे पूर्व की सरला वहाँ पर उपस्थित होती, कैलाश नाथ जी ने राजू का कान पकड़ने का प्रयास किया....किन्तु व्यर्थ!....अचानक उनका ध्यान बरामदे मे से उसी ओर आती सरला पर गया तो वे हतप्रभ से

गये । सरला के कदम भी लडखड़ा रहे थे । हाथ पैर जैसे पूर्ण रूप से शिथिल पड़े जा रहे थे । उसकी साडी का पल्लू , उसके वक्ष का सरक्षण छोडकर"" जमीन को चूम चूम कर खिसक रहा था ।

"क्या है जी ?... क्यो चिल्ला रहे हो ?....वे वक्त घर मे आकर शोर गुल करके हमारा सारा नशा काफूर कर दिया । .. कितने प्यार से पुचकार कर बुलाया था उसे !"

सरला का ये रूप देखकर तिलमिला गये थे वे । दात पीसते हुये उन्होने धड़ाम से दरवाजा बन्द कर लिया ।

"तो.. तो आज तुम सब लोगो ने शराब पी है !"

"पापा .मुझे तो बडा मजा आ रहा है....ऐसा लग रहा है, जैसे मैं आसमान मे उड रही हूँ !"

नन्ही नीलिमा ने भी जब अपना रूप दिखाया तो कैलाश नाथ जी के सयम का बाध टूट पडा । उसी पल उन्होने सामने एक कोने मे पडा बास अपने दोनो हाथो से उठा लिया ।

"आज....मैं तुम सब के सिर फोड दूँगा । .. मेरे सामने रोज नाटक करते हो कि आज घर मे आटा नही है,....स्कूल की फीस नही है, यूनीफार्म सिलवाने के लिये पैसे नही है. ...और .. और अब मेरे पीछे जैसे पैसो की बरसात हो गई ?....शराब खरीदने के लिये पैसे बरम पडे.. क्यो ?"

बास हाथ मे लिये, लडखडाते से वे सरला की ओर बढे । लेकिन सरला ने भी निर्भीकता से उनका सामना किया ।

"क्यो ?....तुम जब चाहते हो,....जाकर बैठ जाते हो उस दुकान पर। अब....अब हमारा पीना तुम्हे इतना बुरा क्यो लग रहा है ?"

"ठहर कुतिया आज मैं तेरी और तेरे इन पिल्लो की खाल उधेड दूँगा ।....घर मे शराब कैसे आई ?....बोल, ...कौन लेकर आया है....शराब इस घर मे ?"

"मैं ...मैं लाया है इन सब के लिये शराब ।"

इससे पहले, कि कैलाश नाथ जी का डन्डा कोई अप्रिय कर्तब दिखाता उनके पडोसी मित्र बीच ही मे टपक पड़े ।

"हूँ....तो....तो तुम हो गुप्ता !"

"हाँ हाँ मैं !....और आइन्दा के लिये भी कान खोलकर सुनलो, अब हर पहली तारीख को,....या जब भी तुम उस बार मे देखे जाओगे....मैं इन लोगों को शराब लाकर दूंगा। इन लोगों को भी मालूम तो पड़े कि तुम जिस नशे के सागर में डूब जाना चाहते हो, उसकी गहराई कितनी हैं !.... जब तुम पी सकते हो, तो ये लोग क्यो ऐसे ऐश्वर्य से वंचित रहे ?....तुम जैसे लोग अपने आप को कुण्ठित करार देकर, शराब पीने के लिए जरूरतमद मान लेते हैं। शराब को, जीवन का एक अभिन्न अंग बना लेने पर आमादा हो जाते हैं।....लेकिन वे इस बारे मे नही सोचते कि उनके इस कुकर्म से उनके घरवालों पर कैसा कुठाराघात होता है !....ये आत्मघात है।....इससे तो बेहतर होगा, तुम अपनी गृहस्थी मे रम जाओ।....इसमे जो सुकून है वह इस शराब में कहाँ !....उधर देखो,....ये मासूम बच्चे तुम्हारे प्यार के प्यासे है। तुम्हारी पत्नी तुम्हारे सान्निध्य के सुख को लालायित है। उससे प्यार करके तो देखो !....तुम्हारे जीवन की कुण्ठा को इनका प्यार अपने आप तिरोहित कर देगा।"

"गुप्ता....तुमने मेरी आँखें खोल दीं।....अब....अब मैं कभी शराब को हाथ नही लगाऊंगा।....लेकिन तुम,....कम से कम मेरे बच्चो की जिन्दगी तो तबाह न करो!"

"मुझे खुशी है कैलाश कि मेरी बात तुम्हारे गले तो उतरी! जरा सोचो,....जब मैं तुमको ये काम करते देखना गवारा नही कर सकता,....तो भला बच्चों को क्यों कर ये गलत लत लगाने लगा! चिन्ता मत करो,....तुम्हारे घर में किसी ने शराब नही पी है।....ये तो मात्र अभिनय था, तुम्हारे सिर से सुरूर का भूत उतारने का।"

लज्जित से कैलाश नाथ जी चुपचाप अपने कमरे की ओर बढ़ गये। बच्चे दौड़कर गुप्ता अकल से लिपट गये थे। सरला की स्वप्निल आंखो मे अब प्रसन्नता के डोरे छलक आये थे।



हितैषी

"पापा........!"

टैक्सी से उतरकर, हाथ मे सूटकेस लिये, सागर ने जब अपने घर के अहाते मे प्रवेश करके अपने पिता को आवाज दी, तो केशव दत्त जी अपने बेटे को देखकर खिल उठे।

"अरे !.... सागर बेटे तुम !... अचानक चले आये ? ... खबर क्यो नही दी....!"

"बस, यू ही !.... सोचा अचानक पहुँचकर आप सब लोगो को सर प्राइज दू गा।"

सागर ने अपने घर के अहाते के लॉन मे, रबर के पाइप से पानी देते अपने पिता के समीप ही सूटकेस रख कर उनके चरण-स्पर्श किये, तो केशव दत्त जी ने भावातिरेक मे उसे सीने से लगा लिया।

"सदा खुश रहो बेटे ! तुम्हारे पेपर्स कैसे हुए ?"

"पेपर्स क्या पापा... अब तो रिजल्ट भी आ गया है]... आपके बेटे ने शानदार सफलता प्राप्त की है पापा !... अब देखियेगा मैं आपके होटल को क्या से क्या बना दू गा।"

सागर के चेहरे पर उभर आई आत्मविश्वास की आभा देखकर केशव दत्त जी के चेहरे पर रूआब की चमक उभर आई थी।

"बेटे !...इसीलिए तो तुम्ह बिजनेस मेनेजमेन्ट का कोर्स करन के लिये भेजा था।. खैर।"""आओ, अन्दर आओ....तुम्हारी मा भी आज सवेरे ही तुम्हे याद कर रही थी। तुम्ह देखते ही खुश हो जायेगी।"

केशव दत्त जी ने अतिशय आत्मीयता से सागर को फिर एक बार सीने से लगा लिया और बरामदे की ओर चल पडे। उनके पास ही

बगीचे में काम करते नौकर ने दौड़कर सागर का सूटकेस उठा लिया था।

"अजी"...मैंने कहा... सुनती हो !...देखो तो, कौन आया है !"

केशव दत्त जी सागर को साथ लिये अपनी पत्नी रुक्मणी के कमरे में पहुंचे तो वह भी अपने बेटे को देखकर पुलकित हो उठी थी। मां के चरण स्पर्श करते ही, सागर पर आशीर्वादों की बौछार होने लगी थी।

"जुग-जुग जियो बेटे, दूधों नहाओ....पूतों फलो।"

"अरे अरे मां... और सब तो ठीक है....लेकिन ये पूतों फलो वाली बात आज के युग के अनुकूल नहीं है।"

सागर के इस परिहास पर तीनों खिलखिलाकर हंस पड़े थे।

"तेरे पापा यही कहते रहते थे, कि सागर के बिना घर बड़ा सूना-सूना सा लगता है।....अब तेरे आने से फिर से इस घर में कहकहे लगने लगेंगे। घर की रौनक तो बच्चों से ही होती है न !....अब तू जल्दी से हाथ मुंह धो ले....सफर की थकान भी कुछ कम हो जायेगी....मैं तेरे लिये कुछ खाने को लाती हूं।"

सागर के सिर पर अपना स्नेहिल हाथ फिराते हुये, उस पर ममता उड़ेलती रुक्मणी अपनी आंखों में खुशी से छलक आये अश्रु कण लिये रसोई में समा गई।

"बेटे, नाश्ता करके स्वामी जी के पास, उनसे आशीर्वाद लेने चलेंगे। तुम तो जानते हो, उन्हीं के आशीर्वाद से तुम आज यहां तक पहुंचे हो।....वैसे वो अक्सर तुम्हारे बारे में पूछा करते थे।....अब तुम आ ही गये हो....वो भी तुमसे मिलकर बड़े प्रसन्न होंगे।"

"हां हां....क्यों नहीं... मैं तो स्वयं उनसे मिलने का विचार कर रहा था....कैसा चल रहा है उनका योग-आश्रम ?....आप नियमित रूप से वहां जाते हैं न !"

"बिलकुल !... अरे योग साधना आरम्भ करके भला कोई उसे छोड़ सकता है !....अच्छा, तुम जल्दी से तैयार हो जाओ, वैसे भी समय हो रहा है।"

"जी, बहुत अच्छा।"

केशव दत्त जी को आश्वस्त करके सागर निवृत होने चला गया तो वे पुन लॉन मे आकर पानी देने लगे।

बेटे के भविष्य की योजनाओ के बारे मे मन मे कौंधते प्रश्नो के बारे मे अभी केशव दत्त जी निर्णय के किसी कगार तक पहुचे भी न थे कि सागर ने पुन लॉन मे उनके पास आकर उनके मन सागर मे उमडते तूफान पर अकुश लगा दिया।

"पापा....मैं तैयार हूँ।... अब स्वामी जी से मिलने चलें?"

"हा हा ...मैं तुम्हारी ही प्रतिक्षा कर रहा था।"

तत्क्षण केशव दत्त जी ने पानी का पाइप वही छोड दिया और उनके एक इशारे पर सागर ने बरामदे मे खडा स्कूटर स्टार्ट कर लिया। केशव दत्त जी चुपचाप उसके पीछे की सीट पर बैठ गये।

स्वामी जी के आश्रम के किसी कर्मचारी ने जब आकर बताया कि स्वामी जी अभी योग-साधना मे तल्लीन हैं, तो केशव दत्त जी और सागर वहा बनी पत्थर की बैंच पर बैठ गये।

"पापा... शोभा दीदी और माया दीदी के क्या हाल हैं?"

स्वामी जी का इन्तजार करते सागर ने उन नीरस से क्षणो को वार्तालाप की फुहारो से सुहावने क्षण बनाने के विचार से वार्तालाप प्रारम्भ किया था।

"दोनो अपने-अपने ससुराल मे बिलकुल ठीक हैं ... माया का तो अभी कल ही पत्र आया था।....क्यो?....क्या तुम्हारे पास उन लोगो के पत्र नही पहुचते थे?"

"पत्र तो दोनो के ही आते रहते थे।... दरअसल वर्ष के अन्तिम दिनो मे अपनी परीक्षा मे व्यस्त रहने के कारण मैं उन्हे पत्र नही लिख सका था.... शायद इसीलिये कुछ समय से उन लोगो के भी मेरे पास नहीं आये थे।... माया दीदी के क्या हुआ?"

"इसी महीने की दस तारीख को लडका हुआ है।....अच्छा हुआ बेचारी को इस बार लडका हो गया वरना उसे भी तुम्हारी मा वही ऊट-

पटाग सलाह देती ...जो मुझे दिया करती थी। .लडके के इन्तजार म ज्यादा बच्चे पैदा करने से क्या फायदा एक लडका गोद ले लो ना ? तुम्हारी मा भी बस ! . अपना खून अपना ही होता है ! दूसरे का बच्चा बडा होकर न जाने कैसा निकले, कौन जाने ! अपना खून होगा तो कम से कम सुकर्मी तो होगा ! .तुम्हारी मा के पास तो वेकार की बातो का भडार भरा पडा है।"

सागर अपने पिता के आवेगपूर्ण शब्दो का चुपचाप सुनता रहा। यद्यपि वह उन विचारो से सहमत न था, किन्तु फिर भी, पिता के समक्ष वह चुप ही रहा। शायद वह इस विषय पर पिता से कोई बहस उस समय नही करना चाहता था।

"और ! शोभा दीदी के यहा तो सब ठीक है न ! उनका पत्र भी मेरे पास बहुत समय से नही आया।''

सागर ने वार्तालाप प्रवाह का रुख दूसरी ओर मोडने के विचार से कहा।

'बेटे ! दरअसल वे लोग भी अपनी गृहस्थी म व्यस्त रहती हैं। . अब वो तुम्हारी बहने ही नही किसी की पत्नी मा और बहू भी है ! . फिर, गृहस्थी की भी तो सारी जिम्मेदारिया निबाहनी पडती है उन्ह !"

'स्वामी जी आपको बुला रहे हैं।"

अप्रत्याशित रूप से वहा आकर आश्रम के उसी व्यक्ति ने पिता पुत्र के वार्तालाप मे विघ्न डाल दिया .और वे दोनो उठ खडे हुये।

"स्वामी जी प्रणाम।"

स्वामी जी की कुटिया मे पहुच कर केशव दत्त जी व साँगर ने स्वामी जी के चरण स्पर्श किये तो प्रत्युत्तर मे उन्हे आशीर्वाद मिला।

"कैसे हो सागर बेटे ! तुम्हारे पिता तुम्हारे भविष्य के बारे मे बहुत चिन्तित रहा करते थे. तुम्हारे इम्तहान हो गये ?"

"जी स्वामी जी उसका परिणाम भी आ गया है आपके ही आशीर्वाद से मैं सफल हो पाया हूँ।"

सागर न श्रद्धा स शीप नवा कर स्वामी जी की बात का उत्तर दिया।

"शाबाश बेटा....तुम्हारी सफलता से हमें जो प्रसन्नता हुई है, उसका अन्दाजा शायद तुम्हें न होगा। ....अब तुम्हें अपने पिता के काम-काज में हाथ बटा कर, उन्हें चिन्ता मुक्त कर देना चाहिये।"

"आपके आशीर्वाद से जब इतना सब कुछ हुआ है महाराज, तो अब आगे भी मैं आपकी व पापा की अपेक्षाओं के अनुरूप खरा उतरने का प्रयास करूंगा।"

सागर की बातों में स्वामी जी के प्रति सम्मान के साथ-साथ एक दृढ़ संकल्प की झलक भी थी।

"शाबाश बेटे,....देखा केशवदत्त! कैसा होनहार व आज्ञाकारी पुत्र पाया है तुमने! तुम जैसे जिद्दी व मन्द बुद्धि इन्सान के लिये इससे अप्रतिम नेमत और क्या हो सकती है?"

"महाराज! ये तो आप भी जानते हैं कि मैं दुनिया वालों के समक्ष चाहे जितनी भी जिद् बहस कर लूं किन्तु आप में मुझे अटूट विश्वास है। अपार आस्था है। आपके समक्ष नत-मस्तक होकर, आपका मशविरा शिरोधार्य कर मैंने सदैव किसी न किसी रूप में लाभ की ही प्राप्ति की है!"

"किन्तु केवल मुझ में ही ये आस्था क्यों?....केशव दत्त....जो भी अपने हित की बात करे,....अच्छी बात करे, उसी की बात माननी चाहिये। स्वयं को सर्व गुण-सम्पन्न समझ कर, दूसरों की नेक सलाह को भी बिना सोचे-समझे ठुकरा देना....मूर्खता की पराकाष्ठा है।....तुमको जानकर आश्चर्य होगा कि अब जिस पुत्र की सफलता पर तुम फूले नहीं समा रहे हो, उसकी प्राप्ति तुम्हें उसके सौजन्य से हुई है, जिसमें तुम्हें किंचित मात्र भी आस्था नहीं है।....यानी....तुम्हारी पत्नी रुक्मणी।"

"वो....वो कैसे महाराज?"

केशव दत्त जी ने आश्चर्य से प्रश्न किया था।

"उस संकट के समय में वही मेरे पास आई थी,....क्योंकि वह जो बात तुम्हें समझाना चाहती थी, वह तुम उससे समझ नहीं रहे थे। इसीलिये हमें हस्तक्षेप करना पड़ा था।"

"महाराज, आप क्या कह रहे हैं ?....मेरे लिये तो ये एक पहेली-सी है।""साफ-साफ कहिये न !....कैसा सकट !....कैसा हस्तक्षेप !"

केशव दत्त जी की जिज्ञासा प्रति पल द्विगुणित होती जा रही थी साफ-साफ सुनना चाहते हो ?....तो सुनो।....ये सागर, तुम्हारी सन्तान नही है।"

"क....वय....क्या ! ! !"

स्वामी जी की यह बात सुनकर केशव दत्त जी व सागर दोनो बुरी तरह चौंक पडे। उन लोगो को ऐसा आभास हुआ, मानो स्वामी जी ने कोई-भारी-भरकम गदा, उनके सर पर दे मारी हो।

"मैं जानता था कि सच्चाई जानकर तुम्हारे मन-ओ-मस्तिष्क के तोते उड जायेंगे।... किन्तु सत्य को नकारा नही जा सकता।....तुम्हे ध्यान है बरसो पहले की वो बातें !....जब तुम्हारा होटल एक छोटा-सा रेस्टोरेन्ट मात्र था।....शादी के बाद जब लगातार दो बार लडकिया पैदा हुई थीं, तो तुम बौखलाये से रहते थे।....कितने चिड चिडे से हो गये थे उन दिनो मे तुम !....जब तुम्हारी पत्नी तुम्हे दिन-रात समझाया करती थी कि—"अब लडके की चाह मे हमे बार-बार सन्तानोत्पत्ति नही करनी चाहिये। डॉक्टर्स की भी उस समय यह सलाह थी। बल्कि डॉक्टर ने तो यहा तक कह दिया था कि यदि अब रुक्मणी मा बनी तो उसकी जान को खतरा पैदा हो जायेगा।....किन्तु तुमने उसकी एक न सुनी।.... आखिर तुम न माने और वह फिर गर्भवती हो गई थी।"" तुम्हें समझाने के उसके सभी प्रयत्न जब विफल हो गये थे....तब लाचार होकर वह दुखी,""परेशान सी, मेरी शरण मे आई थी।"

"....आपके पास !....आपके पास क्यो आई थी वो ?"

स्वामी जी की बातो मे प्रतिपल हतप्रभ हुये जा रहे केशव दत्त जी की उत्सुकता उस पलाश मे अपनी चरम सीमा पर जा पहु ची थी।

"इसलिये, कि वो ये भली भाति जानती थी कि तुम मेरी हर बात मानते थे।....इसलिये उसने मुझ से बड़े दुखी मन से याचना की, कि मैं

तुम्हे समझाऊं कि तुम उसे पुन मा बनने पर विवश करके उसका जीवन खतरे म न डालो । ...तब भी समय था । डॉक्टर की सलाह थी कि रुक्मणी की कोख म पलत शिशु-भ्रूण को प्रसव की स्थिति तक नही पहु चने देना चाहिये । .और इसीलिये, तुम्हारे और तुम्हारी पत्नी के हित के लिये उस दिन मुझे जीवन मे पहली बार तुमसे झूठ बोलना पडा था । तुम्ह ध्यान होगा उस समय मैंने तुमसे कहा था कि गर्भधारण के बाद तुम्हारे, अपनी पत्नी के साथ रहने से ही बार-बार तुम्हारे घर मे कन्या पैदा होती है ।.. . और इसीलिये मैंने तुम्हारी पत्नी को, गर्भधारण के बाद एक वर्ष तक तुमसे दूर रहने की सलाह दी थी । .और तुम चू कि मुझ पर श्र धा-विश्वास करते थे, इसलिये तुमने अपने विवेक से कोई काम न लेकर, मेरी ये बेतुकी बात मानकर एक वर्ष के लिये अपनी पत्नी को मायके भेज दिया था । ....याद है न ! '

"जी .!"

स्वामी जी की बातो से सम्मोहित हुये जा रहे केशव दत्त जी केवल इतना ही बोल सके थे ।

"जानते हो, वहाँ रुक्मणी के मायके मे क्या हुआ था ?"

".. !"

केशव दत्त जी का कण्ठ जैसे अवरुद्ध हो गया था उस पल ! स्वामी जी के इस प्रश्न के उत्तर मे उन्होने अपनी प्रश्नवाचक निगाहे स्वामी जी के तेजस्वी चेहरे पर गढा दी थी ।

"मायके पहु चते ही तुम्हारी पत्नी ने सबसे पहले वहा एक नर्सिंग होम मे गर्भपात करवाया था ।'

"गर्भपात ! ! !"

केशव दत्त जी फिर एक बार बुरी तरह चौंक गये थे ।

"और हा तुम्हे यह जानकर आश्चर्य होगा, कि वही के एक अनाथालय से उन्होने नन्ह सागर को गोद लिया था। और उसी अनाथ सागर को लेकर एक वर्ष बाद जब तुम्हारी पत्नी लौटी, तो तुम सागर को देखकर अपने सभी दु ख दर्द भूल गये थे ।....इतना ही नही, मानसिक रूप

से प्रसन्न रहने से तुम्हारा होटल भी दिन दूना-रात चौगुना फलता फूलता रहा। और उसका परिणाम भी आज तुम्हारे सामने है।" जरा सोचो . सागर को गोद लेने मे न केवल तुम्हारा ही हित हुआ, अपितु एक अनाथ को सुदृढ आर्थिक व पारिवारिक धरातल भी मिला। आज देश की बढती आबादी को रोकने के लिये अपना कर्त्तव्य स्वरूप, यदि देश का प्रत्येक नागरिक, पुत्र अथवा पुत्री की चाह मे आवश्यकता से अधिक बच्चे पैदा करके स्वय की आर्थिक विक्षिप्तता को दावत देने के स्थान पर, ऐसी परिस्थिति म अनाथ बच्चो को गोद लेकर उन्हें सरक्षण प्रदान करे, तो क्या हम खुशहाल, समृद्धिशाली नही हो जायेंगे? हर व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी को समझे, अपने विवेक से काम ले तो क्यू मुझ जैसे आदमी को तुम जैसे लोगो को समार्ग दिखाने के लिये झूठ का सहारा लेना पडे? क्या मै झूठा नाटक करके स्वय को तुम्हारी नजरो से गिराना पडे?''

'नही नही स्वामी जी .आपने जो कुछ किया है उससे आप मेरी नजरो म और महान् हो गये है।—मैं जानता हूँ आप जो कुछ करेंगे मेरे हित के लिये ही करेंगे। इसीलिये तो मैं आपकी सब बातें मानता हूँ! . आज मेरा यह विश्वास और दृढ हो गया है कि आप ही मेरे सच्चे हितैषी हैं।"

केशव दत्त जी ने फिर एक बार स्वामी जी के चरण स्पर्श करके, अपने पास खडे सागर को अपने सीने से लगा लिया था।

□

निर्णय

उस दिन शाम के चार बजे उसे कल्पना का फोन मिला था। उसने सवेरे-सवेरे राम निवास बाग में बुलाया था। वह हैरान था, कल दोपहर को तो कोई बात न थी, ऐसा एकदम क्या काम आ पड़ा ?

भोर की कोपल फूटी और अंधियारे ने अपना फैला आंचल धीरे धीरे समेटना प्रारम्भ कर दिया। चारो ओर कोहरे की घनी तह के कारण वह मोटर साइकिल बहुत धीरे धीरे चला रहा था। अचानक म्यूजियम के सामने लॉन पर कल्पना को खडा पाकर उसने गाडी वही पार्क कर दी। सर्दी से ठिठुरे अपने दोनो हाथो को आपस मे रगडते हुये वह सीढ़िया चढ कर लॉन तक पहुँच गया।

"हलो कप्पू !"

"हलो रतन।" कहकर कल्पना उस की ओर बढी।

"इतनी सर्दी मे यहा बुलाकर क्या हमारे प्यार की परीक्षा ले रही हो ?"

रतन के शब्दो मे शिकायत का पुट था।

"घबरा गये क्या ?....लोग तो अपनी महबूबा के लिये आसमान से तारे तक तोड लाने का दम भरते हैं !" कल्पना के आकर्षक चेहरे पर एक मधुर सी मुस्कान तैर गई।

"तुम्हारे लिये ये भी करना पड़े तो करेंगे, जानेमन, सुन्दरता की कामना कौन नही करता ?" कहते हुये रतन ने कल्पना को अपने सीने से लगा लिया।

"तो,....आपको भी किसी की कामना है ?"

कल्पना ने अपने आपको बन्धन मुक्त करते हुये प्रश्न किया।

"तुम्हारी,... तुम्हारी चाहत की तपिश ने मुझे इतना गरमा दिया है

कि इस कड़कती सर्दी का अहसास तक न हुआ ! लम्बे घने घुंघराले बाल, पतली मृणाल सी बाहे, सुराहीदार गरदन, हिरणी सी चपल आखें, गुलाबी लरजते होठ और रात की रानी सा महकता जिस्म ! सच कल्पना तुम्हारी ये निधि ही तो मेरी कामना है !"

रतन से अपनी प्रशसा सुनकर कल्पना के चेहरे पर प्रसन्नता की एक भी किरण न उभरी, बल्कि वह उदासी के भवर मे जा फसी । रतन ने उसकी चिबुक को ऊपर उठाते हुये कहा "क्या बात है, तुम इतनी भावुक हो गई ?"

"तुमने बिल्कुल ठीक कहा रतन ! पुरुष की आखें औरत की देह मे लगभग इन सब खूबियो को तलाश कर लेती हैं, लेकिन मैं अपने बारे मे कुछ और भी जानना चाहती हूँ । क्या मेरे शारीरिक सौन्दर्य के अतिरिक्त मेरे भीतर कोई ऐसा आकर्षण नही है, जो तुम्हे बाधकर रख सके ?" कहते-कहते अश्रु लडियाँ उसके कपोलो पर चू पडी ।

"ओSSS....डार्लिंग, लगता है हमने गलत टॉपिक छेड दिया । चलो नीचे रेस्तरा पर चाय पियेंगे !"

सूरज की किरणो के पृथ्वी पर आगमन के साथ ही ओस की बूदें धीरे-धीरे ओझल होकर वातावरण को शुष्क बना रही थी । रतन ने कल्पना के हाथ अपनी हथेलियो के बीच ले रखे थे । उस कडकती सर्दी मे चलते हुये दोनो के जिस्म ऊपर से ठण्डे थे, लेकिन अन्तर मे एक आधी थी ।....विचारो की आधी ।

चलते-चलते कल्पना ने रतन को बताया कि उसके पिता भी उसकी मा से सदैव यही कहा करते थे । पर आश्चर्य की बात है कि इस पर भी वे अपनी फैक्ट्री मे काम करने वाली अपनी सैक्रेटरी के दीवाने रहे । कहते थे—"उसके सफेद सगमरमरी जिस्म मे ऐसी चमक है जैसे उसका जिस्म हाड-मास का न होकर हीरे का बना हो !"....एक दिन उनकी सेक्रेटरी के पिता घर आये और गिडगिडाते हुये मा से बोले, "आप अपने पति को समझाइये न !" कुछ दिनो बाद पिताजी उस लडकी के साथ विदेश चले गये, जहाँ से फिर कभी न लौटे !....मैं ये चाहती हूँ कि औरत के प्रति खिचाव का कारण मानसिक होना चाहिये मात्र दैहिक नही ।"

रतन ने कल्पना को अपने बाजुओं में कस लिया। उसे चुम्बनों की बौछार से रोमांचित कर डाला।....तुम बहुत प्यारी गुड़िया हो !...."

जानेमन तुम तो अच्छी-खासी दार्शनिक निकली !"

चाय पीने से पहले दोनों एक ठेली वाले से मूंगफली लेकर पार्क की एक बैंच पर बैठ गये।

"हां अब कहो क्या बात थी ?....इस समय कैसे बुलाया था मुझे ?"

मूंगफली का दौर प्रारम्भ होने के साथ ही बातों का सिलसिला भी फिर से चल पड़ा।

"मां का पत्र आया है। उन्होंने मेरे लिये कोई लड़का देख लिया है ! इसीलिये कोई निर्णय लेने से पहले मेरी स्वीकृति मांगी है !....दरअसल मैं शीघ्र ही कोई निर्णय लेना चाहती हूँ।"

"बस ! इतनी सी बात ! ..मैं समझा, न जाने क्या सीरियस बात है जो इतनी सवेरे बुलाया है तुमने !"

"..वैसे मां ने ये भी लिखा है कि यदि मेरी पसन्द का भी कोई लड़का हो तो उन्हें स्वीकार्य होगा।"

रतन ने बात अनसुनी कर दी तो कल्पना ने उसे फिर से कुरेदने का प्रयास किया। इस पर रतन अजीब सा मुंह बनाकर बोला, "पर ऐसी भी क्या जल्दी है !"

"मां अपनी जिम्मेदारी पूरी कर देना चाहती है...फिर इसमें बुराई भी क्या है ?"

रतन का चेहरा अब गम्भीर हो गया था। शायद उसने देख लिया था कि बचाव का कोई रास्ता नहीं है। नीची निगाह किये मूंगफली छीलते हुये बोला, "कप्पू दरअसल मैं अपने सम्बन्धों को कोई नाम न देकर रोमान्टिक जिन्दगी जीना चाहता हूँ। क्योंकि शादी के बाद वही घिसी पिटी बातें, बासी समस्याएँ, वही एक रसता रह जाती है ! सचमुच, विवाह के बाद प्रेम चुक जाता है ! जिन्दगी के तमाम रंग फीके हो जाते !"

"प्रेम कोई ऐसी स्थिति नही है जिसे तुम पकड कर रख सको। यह तुम्हारा कोरा वहम है कि, प्रेम विवाह के बाद मर जाता है। दरअसल काम जब तक केवल शरीर तक सीमित रहता है तब तक वह केवल तुष्टि मात्र है। लेकिन जब काम हमारे अन्तर के पुष्प की पखुडिया की तह खोल कर रख देता है, तब वास्तविकता का अहसास होता है जो जिन्दगी की असली चाह है।" किन्तु दो पल रुककर कल्पना ने फिर बोलना प्रारम्भ किया। 'मैं यह नही कहती कि किसी का, एक खास उम्र तक विवाह को टालना गलत है किन्तु अकारण टालने की नीति अपनाना काम जीवन से अलग हटने वाली बात है और सुनो, प्रेम का सचय उसकी हत्या है। उसे फैलने दो उसे प्रफुल्लित होने दो। इसी म उसका विकास है। सन्तान के रूप म आदमी अपना विस्तार पाकर सन्तुष्ट होता है। इससे उसकी आत्मा मन और प्राण का विस्तार होता है।' कल्पना ने रतन की बात का उत्तर देते हुये कहा।

"उफ्फ कप्पू तुम य क्या बखेडा ले बैठी ?

"रतन, य बखेडा नही है हमारी अपनी समस्या है! जीवन की सबसे कठोरतम समस्या!'

कल्पना अब हॉस्टल लौटना चाहती थी। उसे पता था, थोडी सी देर होने पर परसो वार्डन ने उसे फटकारा था। बडी मुश्किल से सॉरी कह कर पीछा छुडाया था उसने। लेकिन आज उसे फैसला करना ही था। इसलिये वह निर्णय की तह तक पहुँचना चाहती थी।

सहसा रतन उसके कन्धे पर हाथ टिका धीरे से बोला, खाना खाओगी ?

'कहा ?"

'एल एम बी मे!'

'विचार तो बुरा नही!'

वह किसी यन्त्रचलित हिरणी की तरह मोटर साइकिल पर बैठ गई। जौहरी बाजार पर पहुँचते पहुँचते उसका जिस्म कापने लगा था। उसने रतन की पीठ पर हाथ रख लिया था। लम्बा छरहरा जिस्म तीखे नैन नक्श

पर घुंघराले बालों से पटा ललाट, चौड़ी छाती, उन्मादक रस भरी सी आँखें, भारी-भरकम पुरुषोचित आवज ! सभी कुछ उसने रतन में पाया था। रतन की पीठ के स्पर्श से एक अजीब सा उन्माद उसके जिस्म में दौड़ गया। उस क्षण के स्पर्श से वह रोमांचित हो उठी थी। एल एम वी पहुंच कर वे एक कैबिन में जा बैठे।

बैरा आर्डर ले जा चुका था। दोनों शान्त थे, लेकिन मन में, उमड़ते द्वन्द्व को दोनों समझते थे। कुछ पलों की खामोशी को आखिर कल्पना ने ही भंग कर दिया।

"तुमने सिसोदिया गार्डन देखा है ?"

"हां, बड़ा सुन्दर बाग बनवाया है महाराजा ने। बड़े पारखी आदमी होंगे वे ! बल्कि बड़े रोमांटिक भी होंगे।"

"ये तुम कैसे कह सकते हो ?"

"अरे ये तो मानी हुई बात है, उस जमाने के राजा लोग सैकड़ों रानियां रखते थे।"

"क्या बक रहे हो ? इतनी औरतें और एक आदमी ! यह तो कोरा व्यभिचार हुआ !"

"व्यभिचार नहीं, दरअसल य सुन्दरता के लिये पिपासा है। जहां सुन्दरता दिखी, वहां उसका उपयोग किया।"

"यह पिपासा ही तो व्यभिचार है ! प्रेम का अहसास ही वहां शुरू होता है जब हम उसे सूक्ष्म रूप से महसूस करें। तुम इसे सही समझते हो क्या ?"

वह रतन की प्रतिक्रिया देखना चाहती थी।

"अरे, ये तो राजा महाराजाओं की बातें हैं। कहां राजा भोज कहां गंगू तेली ! हम तो जिन्दगी घसीट रहे हैं। हम तो बस तुम्हारे दीवाने हैं। देखें, कहां तक निभाती हो !"

बैरे के पुन आगमन के साथ बातों का सिलसिला टूट गया। दोनों

चुपचाप खाना खाने लगे। खाना खाते हुये रतन ने डिपार्टमेंट का जिक्र छेड़ दिया।

'तुम्हारे डिपार्टमेंट का क्या हाल है ?

"मैं ज्यादा दखलदाजी नही करती, पर कल प्रोफेसर उपाध्याय को फटकारना पड़ा।"

"ऐसा क्या हो गया था ?"

"बड़ा बेशरम है। .कहता था सुन्दर लड़कियाँ हमेशा याद रहती है। जब मैंने कहा कि, "सर पाठ्यक्रम तक रहियेगा तो खिसिया कर रह गया"

"बड़ा रोमांटिक स्वभाव है उसका। एक दिन मुझसे कहता था, हीरे की अंगूठी पहना करो इससे लड़की खिंची चली आती है। बड़ा मजेदार आदमी है वह।"

"रहने दो उस मजेदार आदमी को। कम्बख्त बड़ा रसिया है। किसी दिन किसी लड़की की सैण्डल खाकर ही होश ठिकाने आयेंगे उसके।' कहकर कल्पना जोर से हस पड़ी।

बैरा खाने के बर्तन ले जा चुका तो वे दोनों कॉफी का इन्तजार करने लगे। लेकिन इसके लिये उन्हे अधिक इतजार नही करना पड़ा।

"रतन, फिर मैं मा को क्या लिखूँ ?"

कॉफी का घूट भरते हुये कल्पना ने फिर वही प्रसग छेड़ दिया।

'शक्कर कम है।" बात पलटने की गरज से तेज स्वर मे रतन ने बैरे से कहा।

कल्पना को उस पर शक हो चला था। लेकिन धैर्य के अतिरिक्त चारा भी क्या था। किन्तु चन्द लमहो बाद ही कल्पना ने उस वातावरण मे फिर से अपना प्रश्न उडेल दिया।

"ऐसी क्या जल्दी है कप्पू ?' उसने खीज कर कहा था।

"अगर मुझे मा की बात को मानना पड़ा तो सचमुच मेरे लिये वह एक बड़ी समस्या होगी।'

यह ता तुम्हारे प्रेम की परीक्षा होगी ! मैं तो फिलहाल आजाद पछी की भाति जीना चाहता हूँ ।"

कल्पना फफक कर रो पडी । 'तुम मद हो । तुम औरत की लाचारी को कैसे समझोगे ? औरत आदमी को चुनती है फिर उसे छोडना नही चाहती । जब कि आदमी आदमी इस कुछ महत्व नही देता ।

क्या बेवकूफी की बात करती हो ? हिम्मत से काम लो । रतन के चेहरे पर आक्रोश की परत चढ चुकी थी ।

रतन ने जब कल्पना को विश्वविद्यालय का फाटक पार कर गर्ल्स हॉस्टल के नुक्कड पर उतारा तो कल्पना एकदम नमस्ते कह कर हास्टल के फाटक की ओर बढ गई थी । उसका मोह खत्म हो चुका था ।

सारी रात वह विचारो के भवर म फसी रही । न जाने कब उसे नीद आ गई थी । सवेर उठते ही उसने दराज स पत्र निकाल कर माँ को लिख दिया— जो ठीक समझो निर्णय ले लो । जरूरत पडने पर मुझे बुला लेना ।

और उसी दिन उसने वो पत्र डाक म डाल दिया था ।



मिति-रक्षा

उसके हाथ से मटकी छूटते छूटते बची थी। साथ म फुनवा न होती तो शायद मटकी अब तक चकनाचूर हो चुकी होती। उसने अपना घाघरा समेट कर तनिक ऊपर उठा लिया और दोनो घुटनो के बीच दबाकर जब उस पोखर म से मटकी भरी तो उसका ध्यान अनायास ही बनवारी की ओर चला गया था। जो कुछ ही दूरी पर खडा उसे ललचाई नजरा से देख रहा था। और उसने घबराकर घुटनो के बीच की दूरी बढा दी जिससे उसकी गोरी गोरी खूबसूरत टागा को फिर एक बार उस घाघरे ने अपने आप म समेट लिया। फुनवा उसके डर को भाप चुकी थी। उसने स्वय जल्दी से अपनी मटकी भरकर अपनी बाहो के घेरे मे समेटकर कमर पर रख ली और दुलारी को चलने का इशारा करके स्वय भी वहाँ से चल दी। अपने भयभीत चेहरे को बलात् कठोरता ओढाकर दुलारी ने बनवारी की ओर देखा और फुनवा के पीछे होली।

बनवारी को देखकर वह डर अवश्य गई थी लेकिन वह जानती थी कि बनवारी कोई गुण्डा नही है। एक अच्छा खासा खूबसूरत जवान है। गाँव का छैला। उसका गठा हुआ जिस्म लम्बा कद व घुघराले बाल किसी भी नवयौवना को आकर्षित करने के लिये काफी थे। तब तो वो खुद ही मरी जाती थी बनवारी पर! पानी लेन के बहाने वह कई बार अकेली यही पोखर पर आकर घण्टा बनवारी स प्यार की बातें किया करती थी। दीनू काका से तो उसकी इस विषय पर बात करने की हिम्मत न होती थी किन्तु अपनी मा स उसने साफ साफ कह दिया था कि वो ब्याह करेगी तो बनवारी से! मा को भी एतराज इसलिये न हुआ क्योकि बनवारी ने तब तक गाव क स्कूल की सबसे बडी जमात पाचवी पास करके उस गाव म अपने पिता की एकमात्र परचूनी की दूकान सम्भाल ली थी। उसकी मा न दीनू काका को राजी करके पण्डित जी से पूछकर अच्छा सा मुहूर्त देखकर बनवारी के साथ दुलारी की सगाई भी कर दी थी। विवाह सूत्र म बधकर अपना छोटा सा घर बनाने के उन्माद म दोनो प्रेमी फूले न समाते थे।

लेकिन फिर, अचानक एक दिन दुलारी के मन आंगन में उत्पात हुआ जिसने उसके अन्तर म सनसनी सी मचाकर रख दी थी उस दिन जब भोर की बादल फूटी, कालिमा ने अपना पैना आंचर धीरे धीरे समेट लिया तो सूरज की किरणो के पृथ्वी पर आगमन के साथ ही सारे गाव म ये समाचार आग की लपटो के समान फैल गया कि बनवारी ने रात को शराब पीकर पटवारी जी की लडकी से बलात्कार कर लिया और वो फरार हो गया है।. ,थोडी ही देर बाद पटवारी जी की लडकी अपने घर म साडी का फंदा लगाकर छत से लटकी मृत पाई गई। इस घटना न दुलारी के जीवन के तमाम रंगीन सपनो को चूर चूर करके बिखरा दिया था।

'अच्छा दुलारी अब तू जा, मैं चलती हूँ।" फुलवा की आवाज ने दुलारी की विचार श्रृंखला को खण्डित कर दिया। उसे पता भी न चला कि वह फुलवा के पीछे पीछे चलकर पोखर से घर तक का लम्बा रास्ता कब तय कर गई।.. घर पहुचकर उसकी मा ने सहारा देकर उसके सिर पर रखी मटकी उतरवाई तो खीज उठी।

तुझे क्या हो गया है री दुलारी ? '

'क्यो ! क्या हुआ मा ? ' दुलारी किंचित आश्चर्य चकित सी अपनी चपल किन्तु बोझिल सी आखो को अपने जिस्म पर घुमती हुई आत्म निरीक्षण करने लगी।

'एक घण्टे म लौटकर आई है और ये चुल्लूभर पानी लेकर चली है ?

'मा वो वो फिर मिल गया था।

मा को बिगडते देख उसने भोलेपन से स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया।

कौन ? वही मुआ बनवारी ?'

हा मा इसीलिय तो मैं जल्दी स भाग आई।

'कोई छेडखानी तो नही की उसने तेरे साथ ?

'नही मैंने उस मौका ही नही दिया।

हूँ । दुलारी की मा उस क्षण चिंतित सी हो गई।

"पकड़ा गया था, तो मन को शान्ति तो थी !....न जाने कम्बख्त दरोगा जी को क्या पट्टी पढ़ा कर छूटकर आ गया....जीना हराम कर दिया है जनम जले ने !....सगाई तोड़ दी....फिर भी पीछा नही छोड़ता....अपनी करनी का फल एक दिन जरूर भुगतना पड़ेगा कम्बख्त को !... मुकदमा तो चल ही रहा है ससुरे पर !....खैर !.. .छोड़ इन बातों को....देख कल शाम को भोलाराम जी कथा में नहीं आ पाये थे....उनका प्रसाद रखा है, ...जा उनके घर दे आ।"

सामने एक तिखाल में रक्खे कटोरे की ओर इशारा करते हुये दुलारी की मां ने आदेशात्मक स्वर मे कहा था।

"मां....भोलाराम जी का घर तो बहुत दूर है।. ..देख कितना दिन चढ़ गया है।....और मैंने अभी तक कलेऊ (नाश्ता) भी नहीं किया है !"

"अच्छा, आज तेरे बापू तो शहर गये है....इसलिये मैने दलिया बनाया है....अन्दर कटोरे में तेरे लिये रखा है,....जल्दी मे खाकर चली जा।"

बड़े प्यार से अपनी लाडली को नाश्ता करने को कहकर उसकी मा तो घर के कामकाज में व्यस्त हो गई और दुलारी नाश्ता करके, प्रसाद का कटोरा उठाकर भोलाराम जी के घर की ओर चल दी।

भोलाराम जी ने अपने खेत पर ही कच्चा-सा मकान बनवा रखा है। इसलिये उनका मकान बस्ती से थोड़ा अलग पड़ता है। उसी पगडण्डी पर काफी आगे चलकर पुलिस चौकी है, जहां से वही रास्ता कस्बे को जाता है।

भोलाराम जी को प्रसाद देकर दुलारी ज्योंही वापस लौटने के लिये उनके घर से निकल कर थोड़ी दूर चली ...उसके पाव तले जमीन निकल गई। सामने से बनवारी को अपने तीन-चार साथियो के साथ उसी ओर आते देख उसकी रुह कांप उठी। पीछे मुड़कर जब उसने देखा तो भोलाराम जी के घर का दरवाजा बन्द हो चुका था। उसी क्षण जब उसने बनवारी और उसके साथियों को अपनी ही ओर आते देखा तो घबराकर वह पीछे मुडकर भागने लगी। भोलाराम जी का घर निकल जाने के बाद वे लोग पूर्ण रूप से दौड़ने लगे थे। उन लोगों का इरादा भापकर उसने अपने आपको उन हैवानो

से बचाने के लिये बेतहाशा भागना शुरू कर दिया। कई क्षणों की दौड़ के बाद अचानक उसका ध्यान पुलिस चौकी की ओर गया, और....उसकी डूबती नैया को जैसे तिनके का सहारा मिल गया।....पीछे मुड़कर देखा तो उसे तनिक राहत मिली।....क्योंकि बनवारी और उसके साथी काफी दूर पहले ही रुक चुके थे। वे जानते थे कि आगे पुलिस चौकी है। अपने अस्त-व्यस्त कपड़ों में बेतहाशा भागती हांफती हुई दुलारी उस पुलिस चौकी के कम्पाउण्ड में समा गई, और बनवारी और उसके साथी थककर, लाचार से पत्थरों पर बैठकर सुस्ताने लगे।

"दरोगा जी....दरोगा जी....मुझे बचा लीजिये....वो बदमाश मेरे पीछे पड़े हैं।"

हांफती हुई दुलारी जब चौकी पर पहुंची तो वह वहां पहरे पर खड़े सिपाही के समक्ष गिड़गिड़ाने लगी।

"कौन लोग तुम्हारा पीछा कर रहे हैं ?"

सिपाही ने विनम्र भाव से पूछा।

"....वो....बनवारी....और उसके साथी, रास्ते में ही बैठे हैं वो लोग"

"ठीक है....तुम घबराओ मत....यहाँ आराम से बैठकर सुस्तालो। मैं उन बदमाशों को अभी पकड़कर लाता हूँ।"

एक टेबल के चारों ओर पड़ी चार-पांच कुर्सियों में से एक पर दुलारी को बैठाकर वो सिपाही कमरे से बाहर चला गया ....अब दुलारी ने राहत की सांस ली। उसने अपने अस्तव्यस्त कपड़े ठीक किये....और चूनर से अपना सिर भी ढक लिया।

आज अगर वो भागती-भागती इस चौकी तक न पहुंचती तो बनवारी उसका न जाने क्या हश्र करता !....इस विचार से ही वह कांप उठी थी। मन ही मन वह इस चौकी वालों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने लगी। सरकार द्वारा खोली गई ये चौकी ग्रामीणों के लिये कितनी हितकर है !....उसने मन में सोचा।

....अभी उसकी सांस पूर्ण रूप से सामान्य भी न हो पाई थी

कि दरोगा जी ने पुन उसी कमरे मे प्रवेश किया। इस बार उसके साथ तीन सिपाही और भी थे।

"हूँ तो वो बदमाश तुम्हे परेशान कर रहे थे ?"

"जी माई बाप।

दरोगा जी ने दुलारी के ठीक सामने पडी मेज के दूसरी ओर रखी कुर्सी पर बैठते हुये अकडकर पूछा, तो दुलारी कृतज्ञ दृष्टि से हाथ जोडकर उसके समक्ष नतमस्तक हो गई।

ठीक है घबराओ मत। हम यहा किसलिये बैठे है ? हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। लेकिन हम पहले वो चीज तो दिखाओ, जिसकी हमे रक्षा करनी है ?"

"मैं समझी नही दरोगा जी आप क्या देखना चाह रहे हैं ?'

'लल्लो इसम समझने की मैंने कौन सी पहली बुझा दी ?"

" तुम्हें अपने इस कटीले जोवन की ही रक्षा करवानी है न ?'

'दरोगा जी sss .!

अब उसे मालूम पडा कि वह भयकर षडयन्त्र का शिकार हो चुकी है। दरोगा जी की बात का अर्थ समझते ही वह कठोरता से चीख पडी। एक झटके मे कुर्सी से उठकर बाहर जाने के लिये ज्यो ही वह पीछे मुडी, दरवाजे पर खडे तीनों सिपाहियो के वहशियाने चेहरे देखकर उसकी चीख निकल पडी।

"अब जाती कहा है ? यहाँ आने के बाद जब तक फैसला न हो जाये, यहा से जाने की इजाजत नही है !"

इससे पहले कि दुलारी उस कमरे से बाहर निकल पाती, उन तीनो म से एक सिपाही ने किवाड अन्दर से बन्द कर लिये।

"नही , मुझे कोई फैसला नही करवाना मुझे जाने दो।" दुलारी अपमान व भय से चीख पडी। उसे अपने सतीत्व पर छाये सकट का आभास हो चला था। रोम रोम भावी अपमान व पीडा की आशका से सिहर उठा था और वह एक बेबस पछी-सी उस कमरे म चक्कर काटने लगी, जहाँ

अपनी आखो मे वासना के डोरे लिये वो चारो दरिन्दे उसकी चढती जवानी को अपनी हवस का शिकार बनाने को प्रयत्नशील थे।....एक झपट्टे के साथ उसके पीछे से एक सिपाही ने उसका गदराया बदन अपने बाजुओ मे भर लिया, और वह तिलमिला उठी। उसकी हृदयविदारक चीख उस कमरे की दीवारो से टकरा-टकरा कर दम तोड गई। इससे पहले कि वो बन्धन मुक्त हो पाती दूसरे सिपाही ने उसकी गिरेबा से चोली पकडकर जोर से खीच डाली और दुलारी के अछूते जोबन पर चढा वो आवरण भी उसका साथ छोड गया। दुलारी के भरे-पूरे जिस्म की झलक पाकर उन सभी सिपाहियो की आखें चु धिया गई और वे कुटिल मुस्कान बिखेरते हुये अपने होठो पर जीब फिराने लगे।

"कमीनो....कुत्तो....मैंने तुम्हारा क्या बिगाडा है ?.. मुझे देखकर तुम्हें अपनी बेटी की याद नही आई ?....हरामी के पिल्लो. ..सरकार तुम्हें गाँव वालो की रक्षा की तनखा देती है.. .और तुम थू... ।...."

आखो से अश्रु लडिया टपकाते हुये घृणित चेहरे से दुलारी ने उस सिपाही के मु ह पर थूक दिया, जिसने उसकी चोली खीची थी।

"स्साली थूकती है ?"

दुलारी के मु ह से निकले अपमानजनक शब्द सुनकर वो सिपाही तो बेहयाई से मुस्कुरा रहा था, किन्तु ज्योही दुलारी ने उसके मु ह पर थूका.... जोश मे आकर उसने अपनी दोनो हथेलियो के किनारो से उसके गले के दोनो ओर एक साथ बलिष्ट ,वार किया.. .और दुलारी, एक सिसकी लेकर शान्त हो गई। .. वह बेहोश होकर उस सिपाही की बाँहो मे झूल गई, जिसने उसे पीछे से पकड रखा था....और फिर देश व समाज के दुश्मन, गद्दार, पथभ्रष्ट समाजकटक अपनी विक्षिप्त मानसिकता का परिचय दे रहे थे।

"दरोगा जी, मुझे अभी अभी एक छोरे ने बताया है कि बनवारी के डर से भागकर दुलारी यहा आगई है ?"

दुलारी की मा ने चौकी कम्पाउण्ड मे घुसते ही सामने खडे सिपाही से प्रश्न किया जो अभी अभी उसी कमरे मे से निकला था।

"अच्छा... तो वो दुलारी तेरी बेटी है ?"

अपने अस्त-व्यस्त कपड़े ठीक करते हुये उस सिपाही ने बड़े रुआव से
र किया।

"जी माई बाप।"

"सम्भालकर रखा कर अपनी छोकरी को,....गांव के गुण्डों से हमने
या है उसे !"

दीनू काका की पत्नी को कृतज्ञता प्रकट करते देखकर उस सिपाही का
ाव द्विगुणित हो गया।

"कहाँ है मेरी बेटी ?"

"अन्दर है,....दरोगाजी उसकी रपट लिख रहे है।....दो मिनट ठहर,
ी आती है तेरी बेटी।"

"बड़ी मेहरबानी सा'ब....आज आपने मेरी बेटी को बचाकर जो इसकी
ा की है, मैं आपके इस एहसान की कीमत कैसे चुकाऊंगी !"

दुलारी की मां सिपाही की बात से आश्वस्त हो गई थी कि उसकी
ी सुरक्षित है। इससे पूर्व कि सिपाही फिर कुछ बोलता, दुलारी उस कमरे
बाहर निकल आई। पथराई आँखें व निढाल जिस्म लिये। चार कदम
गे बढ़कर वह अपनी मां से लिपट गई।

"मां,....मेरी रक्षा की कीमत तुम्हें चुकाने की जरुरत नहीं है....मैंने
ः चुका दी है।"

कहकर वह फफक-फफक कर रो पड़ी।....उसके अन्तर में अब सदा
लिये वेदना और अन्धकार का साम्राज्य हो चुका था।

